जलते दीप

महकते फूल

प्रकाशक—
जयकृष्ण अग्रवाल
कृष्णा ब्रदर्स,
कचहरी रोड, अजमेर

•

मूल्य : चार रुपये

•

मुद्रक—
हरिकृष्ण यादव
सुधीर प्रिन्टर्स,
[illegible], अजमेर

प्रकाशकीय

विगत कई वर्षों से सरकार और समाज दोनों ही किशोरो के लिये रचनात्मक व सोद्देश्य साहित्य की आवश्यकता को महसूस कर रहे है। किशोरों के लिये साहित्य न लिखा गया हो, सो बात नही। उनके लिये बहुत कुछ लिखा गया है, लेकिन अधिकाश साहित्य या तो मनोरजनार्थ है या फिर पूर्ण उपदेशात्मक! उपयोगिता की दृष्टि से लिखे गये किशोर-साहित्य के दर्शन कभी-कभी और कही-कही ही होते हैं। 'जलते दीप महकते फूल' मे मनोरजन, उपदेश व शिक्षा के साथ साथ व्यवहारिक सोद्देश्यता व सदाशयता भी है।

आज देश के सभी नेता, कर्णधार, अधिकारी, शिक्षा-शास्त्री, स सुधारक व शुभ-चिन्तक मच पर खडे होकर किशोरों के लिये जिन बा वाछनीय बताते हैं तथा उद्बोधन करते हैं; उन्हीं बातों को और उनक वाणी को एक रोचक सरल व सरस किशोरोपयोगी लघु कथाओं के रूप पुस्तक मे मुखर करने का सफल प्रयास किया गया है।

अभिभावक व अध्यापक इस पुस्तक की उपयोगिता का सही मू कर सके तो निश्चित् रूप से भविष्य में ऐसी रचनाओ के प्रकाशन के लि प्रोत्साहित होंगे।

जयकृष्ण अग्रवाल

माँ को—

जिसकी स्मृतियों के 'जलते दीप और महकते फूल' आज भी मेरे जीवन के मार्ग में बरबस आ पड़ने वाले अन्धकार से संघर्षरत हैं।

विक्रय के लिये नहीं

—ब्रज भूषण

तनकर नहीं, झुककर झुकाया जायगा

पोस्टमेन छज्जूराम के हाथ में चिट्ठी थमाकर आगे बढ़ गया। वह उसे उलट पुलट कर देखने लगा, पर कुछ समझ नहीं सका। घर से बाहर आकर उसने इधर उधर निगाहें दौड़ाईं, ताकि किसी पढ़े लिखे और भले आदमी से चिट्ठी पढ़वा सके, मगर उसे आसपास ऐसा कोई आदमी नज़र नहीं आया।

छज्जूराम लगभग पैंतीस छत्तीस वर्ष की आयु का एक सीधासादा व्यक्ति है। फल बेचकर जैसे तैसे अपना और अपने परिवार का गुजर कर लेता है। इन दिनों उसकी पत्नी बच्चों समेत अपनी मायके गई हुई है। वह आठ बच्चों का पिता है। सबसे बड़ा लड़का है—श्याम, उसके बाद दो लड़कियाँ हैं, फिर चार लड़के और सबसे छोटी एक लड़की। पति पत्नी और बच्चे मिलाकर परिवार में कुल दस प्राणी हैं। सुबह से शाम तक फल बेचकर छज्जूराम जितने पैसे कमाता है, वे सब परिवार के भरण पोषण में ही खर्च हो जाते हैं। अच्छे कपड़ों और खेल खिलौनों के लिये तो बच्चे तरसते ही रहते हैं।

जब बच्चों के तन को पूरा कपड़ा ही नहीं जुटता, तो उन्हें पढ़ाने लिखाने का सवाल भी नहीं उठता। अतः जब श्याम छोटा ही था, तो पढ़ने के लिए स्कूल न भेजकर छज्जूराम ने उसे अपनी दुकान ही पर बैठा लिया।

पत्नी जब मायके जाने लगी थी, तो छज्जूराम ने छोटे बच्चों और लड़कियों को उसके साथ भेज दिया था मगर श्याम को अपने पास ही रक्खा ताकि दुकान के काम में बाधा न पड़े। इस समय भी श्याम दुकान पर ही गया हुआ था और वह खुद घर पर खाना बना रहा था। खाना बना कर हाथ धोने लगा तो पोस्टमेन ने आवाज लगाई।

चिट्ठी हाथ में थामे वह मुंह ही मुंह में बुदबुदाने लगा—"हूँ——ऊँ—कौन पढ़कर देगा। श्यामू तो—!—! उसे कहाँ पढ़ना आता है।"

चिट्ठी जेब में डालकर वह वापिस घर में आया। अपना और श्यामू का खाना टूटेफूटे टीपन में रखकर दरवाजा बन्द किया और ताला लगाकर दुकान की तरफ चल दिया। दुकान घर से लगभग दो सौ कदम पर ही थी और उससे पहिले पोस्ट ऑफिस रास्ते में पड़ता था। उसने निश्चय किया कि चलकर मुन्शी जी से चिट्ठी पढ़वा लेता हूँ।

जल्दी जल्दी कदम बढ़ाकर वह पोस्ट ऑफिस आया और मुन्शीजी के पास पहुँचकर ऊँची आवाज में बोला—"राम राम मुन्शीजी!"

"राम राम छज्जू! कहो कैसे हो?" सिर उठाकर मुन्शीजी ने कुछ लिखते लिखते कलम रोककर कहा।

"आप की किरपा है मुन्शीजी; बस जरा यह चिट्ठी पढ़ दीजिये। दायें हाथ में थमी चिट्ठी मुन्शीजी की तरफ बढ़ाकर छज्जूराम ने कहा।

"भाई छज्जू, ठहरना पड़ेगा।"

"देर हो रही है मुन्शीजी, श्यामू दुकान पर अकेला है।"

"ऐसी जल्दी है तो किसी और से पढ़वा लो भैया, मैं तो अभी काम कर रहा हूँ।"

"लो आप तो नाराज हो गये।"

"अब तुम बात ही ऐसी करते हो, तो क्या करें। यहाँ जो भी आता है घोड़े पर जिन डालकर ही आता है, एक पाँव रथ पर एक पाँव पथ पर। किसी को देर होती है, किसी को जल्दी जाना है। मुन्शी बेचारे को क्या भगवान ने दस आँखें और दस हाथ दिये हैं कि जो भी आता जाये, उसका काम करता जाय! आये हो, तो दो मिनट ठहरो। हाथ का काम पूरा कर लूँ, फिर तुम्हारी चिट्ठी भी पढ़ देता हूँ।"

छज्जूराम ने मुन्शीजी का डाँट से भरा भाषण सुना तो चुप हो गया . को मारकर बोला—"ठीक है मुन्शीजी। आप काम कर लें, तब तक

"यह हुई बात समझदारी की।" इतना कहकर मुन्शीजी मेज़ पर रखे कागज़ पर कलम चलाने में जुट गये।

छज्जूराम खड़ा खड़ा सोचने लगा कि यह मुन्शी भी क्या अजीब आदमी है, किसी को कुछ समझता ही नहीं। दो अक्षर क्या पढ़ गया, अपने आप को राजा भोज समझता है। चिट्ठी पढ़ने के पैसे लेगा और इतनी बातें मुफ्त में सुना दी, सो अलग। कितना मिजाज़ दिखाता है! काश! मैं खुद पढ़ा लिखा होता, तो क्यों इसकी खुशामद करनी पड़ती। पर, मेरे पिता ने मुझे पढ़ाया लिखाया नहीं, सो आज इसकी बातें सुननी पड़ती हैं। खैर! मुझे तो मेरे पिता ने नहीं पढ़ाया, पर मैं तो श्यामू को पढ़ा सकता था। मैंने उसे भी बचपन से ही दुकान पर बैठा लिया और वह अनपढ़ ही रह गया। उसे भी कभी कोई चिट्ठी पढ़वानी होगी, तो मुन्शीजी जैसे के मुँह की तरफ देखेगा। दूसरे बच्चों का भी यही हाल होगा। पर नहीं, मैं अब अपने बच्चों को जरूर जरूर पढ़ाऊँगा, उन्हें अनपढ़ नहीं रहने दूँगा।

सोचते सोचते छज्जूराम को दूसरे ही क्षण विचार आया कि खाने को पूरा नहीं होता, तन ढकने को पूरे कपड़े नहीं जुटते, तो बच्चों को पढ़ाऊँगा कैसे! यानि कि मेरे बच्चे अनपढ़ ही रहेंगे। कुछ चिट्ठी वगैरह पढ़वाने और लिखवाने के लिये जिन्दगी भर उन्हें दूसरों की खुशामद ही करनी पड़ेगी और उनके आगे गिड़गिड़ाना पड़ेगा। ओफ! यह तो बहुत बुरा होगा! फिर उसने अपने आप से कहा, मगर छज्जूराम, इस बुराई का जिम्मेदार तो तू खुद है। तू एक अयोग्य पिता है, अपने बच्चों को न तो पढ़ा लिखा सकता है, न अच्छी तरह से खिला पिला सकता है, तो इतने बच्चों को जन्म देने की क्या जरूरत थी। तू इन बच्चों का बाप नहीं, दुश्मन है! दुश्मन!

वह मन ही मन अपने को कोसने लगा। उसका मन अपने बच्चों के अन्धकारपूर्ण भविष्य की चिन्ता से काँप उठा। दुख और पीड़ा के बोझ से उसके चेहरे पर उदासी छा गई।

"हाँ भाई छज्जू, ला क्या है?" कलम मेज़ पर रखते हुए मुन्शीजी ने

रहा। मुन्शीजी की बात से उसका ध्यान टूटा। उसने हाथ की चिट्ठी उनकी ओर बढ़ा दी।

"अच्छा तो अन्तर्देशीय पत्र है!"

"क्या मुन्शीजी?" बात को न समझते हुए छज्जूराम ने पूछा।

"कुछ नहीं, लाओ, चवन्नी निकालो।"

"चवन्नी! कैसी चवन्नी?"

"तो चिट्ठी क्या मुफ्त में पढ़ दूं!"

"पर चवन्नी तो आपने कभी नहीं ली, मैं तो हमेशा दो पैसे देता रहा हूं।"

मुन्शीजी ने तिरस्कार से चिट्ठी उसकी तरफ फेंकते हुए कहा—"वे दिन लद गये जब बड़े मियां फाख्ता उड़ाते थे। दो पैसे वाले दिन हवा हुए वायसराय की तरह चले आते हैं कि जल्दी कर दो; यह कर दो वह कर दो देर हो रही है! पैसे निकालते जान सूखती है! जाओ, पढ़वा लो किसी दो पैसे वाले से।"

छज्जूराम ने दुखी मन से नीचे गिरी हुई चिट्ठी उठा ली और कहा—"मुन्शीजी आप बार बार नाराज क्यों होते हैं। मैंने कुछ बुरा तो नहीं कह दिया।"

"नहीं, बुरा नहीं कहा, फूल बरसाये हैं। जाओ यहाँ से, सिर मत खाओ मेरा।"

"ऐसा भी क्या है मुन्शीजी! अनपढ़ और अनघड़ हैं, इसलिये आपके पास चले आते हैं। बाप ने कुछ पढ़ाया लिखाया नहीं, सो आपकी बातें सुननी पड़ती हैं। पर मैं आपसे चिट्ठी मुफ्त में तो नहीं पढ़वा रहा हूं।"

"तुम्हारी जबान बहुत लम्बी हो गई है छज्जू! बड़ा धन्ना सेठ बनता है, तो ला निकाल चवन्नी, पढ़ता हूं तेरी चिट्ठी।"

"चवन्नी तो मेरे पास नहीं है मुन्शीजी, दस पैसे हैं आप ये ले लीजिये और मेरी चिट्ठी पढ़ दीजिये।

छज्जूराम की बात सुनकर मुन्शीजी चिढ़कर बोले—"फिर वही बात! अरे दस पैसे तो मैं सिर्फ पता लिखने के लिये ले लेता हूं, फिर असल चिट्ठी

क्या मुफ्त में पढ़ दूं?"

"पर आपने चवन्नी तो कभी नहीं लीं, फिर इस बार———"

मुन्शीजी ने उसकी बात काटते हुए कहा—"देखो छज्जू, मेरे पास तुम्हारे साथ सिर मारने के लिये फालतू वक्त नहीं है। सीधी सी बात है कि मँहगाई बढ़ गई है, हर तरफ भाव बढ़ चले हैं, तुम भी तो दो पैसे वाला केला दस पैसे में बेचते हो।"

"केले तो मैं बाजार से खरीदकर लाता हूं, मेरी लागत लगती है। पर चिट्ठी पढ़ने में आपकी क्या लागत———"

उसकी बात पूरी हो इससे पहिले ही मुन्शीजी गुस्से से चीख पड़े—"चला जा यहाँ से! चले आते हैं दिमाग खराब करने! नहीं पढ़ूंगा तेरी चिट्ठी! चिट्ठी पढ़वाने आया है कि बहस करने आया है। मेरा लेखा जोखा करना है! चल अपना रास्ता नाप!"

छज्जूराम असहाय भाव से खड़ा खड़ा मुन्शीजी का मुँह देखता रह गया। तभी गोविन्द पास से गुजरा। उसने दूर से मुन्शीजी को छज्जूराम पर गुस्सा करते देख लिया था। वह तेज कदम उठाता हुआ स्कूल जा रहा था, आज उसे कुछ देर हो गई थी। हाथ में किताबें उठाये तेजी से जाते हुए वह छज्जूराम के पास आया और बोला—"क्या बात है, छज्जूरामजी?"

"क्या बताऊँ, गोविन्द भैया! भाग्य खोटे हैं, सो लोगों की बातें सुननी पड़ती हैं, कुछ पढ़ा लिखा होता, तो क्यों कोई मुझे बातें सुनाता। यह चिट्ठी पढ़वानी थी, मगर कौन पढ़े?"

"लाओ मैं पढ़ देता हूँ।" गोविन्द ने चिट्ठी लेने के लिये हाथ आगे बढ़ाकर कहा।

"खुश रहो मेरे राजा। भगवान तुम्हारा भला करे! तो जरा जल्दी से पढ़कर बता दो कहाँ से आई है, किसने लिखी है और क्या लिखा है" कहते हुए छज्जूराम ने चिट्ठी गोविन्द के हाथ में पकड़ा दी।

गोविन्द ने किताबें बगल में दबाई और चिट्ठी को खोलने ही लगा था

कि चश्में से झांकते हुए मुन्शीजी नथुने फूलाकर बोल पड़े—"देख रे गोविन्द, तू उल्टे पुल्टे काम करेगा, तो मैं तेरे बाप से कहकर तेरी हड्डियाँ नरम करवा दूँगा।"

"उल्टे पुल्टे काम कभी नहीं करूँगा मुन्शी चाचा, मैं तो एक बहुत ही सीधा और सही काम कर रहा हूँ। छज्जूरामजी को पढ़ना नहीं आता, इसलिए उनकी चिट्ठी पढ़ रहा हूँ।"

"क्या कहने हैं तेरे और तेरे छज्जूरामजी के! अरे छोकरे! तू मुफ्त मे इस तरह लोगों की चिट्ठियाँ पढ़ेगा, तो मेरा क्या होगा? मेरी रोजी रोटी कैसे चलेगी?"

"अनपढ़ लोगों के अज्ञान से अब और कितने दिन अपनी रोजी रोटी चलाओगे मुन्शी चाचा! अब तो देश के कोने कोने में लोगों को पढ़ने लिखने का चाव लग गया है। सब लोग अपना भला बुरा सोचने लगे हैं।"

"आजकल तू बड़ी बड़ी बातें करने लगा है रे गोविन्द के बच्चे।"

"गोविन्द का बच्चा नहीं, गोविन्द हूँ मुन्शी चाचा।"

"ठहर, आज मैं तेरे बाप रामनारायण से कहकर तेरी तबियत ठीक करवाता हूँ।"

"मेरे पिताजी वैद्य नहीं, बल्कि पोस्टमैन हैं, फिर, अब तो तबियत ठीक है मेरी। परसों जब खराब थी, तब वैद्यजी से गोली ले आया था।" इतना कहकर गोविन्द आगे बढ़ गया। छज्जूराम भी उसके साथ हो लिया।

गोविन्द ने चिट्ठी खोलते हुए कहा—"छज्जूरामजी, चलते रहिये, चलते चलते आपकी चिट्ठी पढ़ देता हूँ। आज जरा देर हो गई है। स्कूल वक्त पर पहुँचना है।"

"हाँ हाँ, जरूर जरूर! मैं भी तो दुकान की तरफ ही जा रहा हूँ।"

छज्जूराम ने मुड़कर मुन्शीजी की तरफ देखा, वे इन दोनों को घूर रहे थे। उसने वापिस नजर मोड़ ली।

गोविन्द ने पूरी चिट्ठी पर एक सरसरी नजर दौड़ाई। छज्जूराम ने

पूछ लिया—"कहाँ से आई है, भैया ?"

"शिवनगर से ।"

"अच्छा ससुराल से आई है । लिखी किसने है ?"

गोविन्द ने चिट्ठी को पलटकर नीचे नाम पढ़ा, फिर कहा—

"वैजनाथ ने ।"

"ओह तो साले साहब ने लिखी है । हाँ तो क्या लिखा है?"

"लिखा है—शिवनगर से वैजनाथ रामलाल का राम राम छज्जूरामजी को मालूम होवे । आगे समाचार यह है कि हम सब यहाँ भगवान की कृपा से कुशलपूर्वक हैं और आपकी कुशलता श्रीभगवान से सदा नेक चाहते हैं । और सब तो ठीक है लेकिन बड़े दुख के साथ लिखना पड़ रहा है कि छोटी बच्ची मालती की तबियत ठीक नहीं है । हमने उसका इलाज कराने की पूरी पूरी कोशिश की, मगर कुछ फायदा नहीं हो रहा है। दूसरी बात दुख के साथ लिखनी पड़ रही है कि किशोर, दीपक और राधाकान्त इतना ऊधम करते हैं कि यहाँ सभी की नाक में दम है । सारे दिन पेड़ पर चढ़कर आने जाते लोगों को पत्थर मारते रहते हैं । लड़कियाँ भी कम शरारती नहीं है । हर वक्त रसोई में घुसी रहती हैं और जो हाथ आता है, उसे मुँह तक पहुँचा देती हैं । हमारे दोनों बच्चों की भी पिटाई खूब होती है । पिताजी और माताजी का कहना है कि आप अब जल्दी ही अपने बाल बच्चों को यहाँ से ले जाने का प्रबन्ध करें । हम और ज्यादा दिन आपके बच्चों की शरारत और नटखटपन सहन नहीं कर सकते । किशोर तो पिताजी की मूँछें पकड़ कर खींचने लगता है ।" यह पढ़कर गोविन्द को हँसी आ गई । छज्जूराम भी फिकी सी हँसी हँस कर बोला—"और क्या लिखा है?"

"लिखा है—'हमारे बच्चों की सभी किताबें कापियाँ पेन पेन्सिलों को खेल खिलौने समझकर तोड़ मोड़ दिया गया है । आस पड़ौस के लोग भी बहुत तंग हैं । आपके बच्चे सभी छोटे बड़ों से तू तड़ाक से बात करते हैं । पिताजी आप पर नाराज हो रहे हैं और कहते हैं कि न तो बच्चों को पढ़ाया लिखाया और न उन्हें कुछ बोलना सिखाया । बहिन की तबियत भी कुछ खराब ही है ।

मैंने आपको यहाँ का पूरा पूरा समाचार दे दिया है अब आप कृपा करके अपने परिवार को जल्दी ही अपने पास बुलाने का प्रबन्ध करें। बाकी सब कुशल है। आपका—बैजनाथ।"

गोविन्द ने चिट्ठी पढ़कर छज्जूराम को लौटा दी। तब तक पीछे आते हुए राकेश ने गोविन्द से कहा—"गोविन्द, आज तो देर हो गई।"

गोविन्द ने पीछे मुड़कर देखा और कहा—"हाँ राकेश, आज देर हो गई है।"

छज्जूराम भी बोल पड़ा—"अच्छा गोविन्द भैया, तुम्हारा बहुत बहुत शुक्रिया!"

"इसमें शुक्रिया की क्या बात है, जरा सा काम था, कर दिया।

"तो आओ, दुकान आ गई है, एक केला खाकर देखो कैसा मीठा है!"

"नहीं छज्जूरामजी, इसकी कोई जरूरत नहीं। अभी अभी घर से खाना खाकर आ रहा हूँ।"

"तो क्या हुआ, खाना खाने के बाद ही तो फलफूल खाया जाता है। आओ, एक आधा केला खाते जाओ।"

"बिल्कुल, बिल्कुल नहीं! मुझे स्कूल के लिए देर हो रही है, मैं तो अब सीधा स्कूल जाऊँगा।"

स्कूल का नाम सुनकर छज्जूराम को कुछ ध्यान आया। वह बोल पड़ा—"भैया, क्या मैं अब अपने बच्चों को नहीं पढ़ा सकता?"

"पढ़ा क्यों नहीं सकते? जरूर पढ़ा सकते हो। बच्चों को ही क्यों, चाहो तो तुम भी पढ़ सकते हो। कुछ ही वर्षों में देखोगे कि हमारे देश में कोई निरक्षर और अनपढ़ नहीं रहेगा। सब पढ़ लिख कर शिक्षित हो जायेंगे। फिर चिट्ठी पढ़वाने के लिये किसी की खुशामदें नहीं करनी पड़ेगी। खुद लिख सकेंगे और खुद पढ़ सकेंगे।"

"मतलब यह है कि मैं भी पढ़ जाऊँगा और मेरे बच्चे भी पढ़ जायेंगे?"

ी की उछाल में छज्जूराम ने पूछा।

"हाँ जरूर ! आपकी इच्छा है तो जरूर पढ़ जायेंगे । तुलसीदासजी ने
हा है—मनोरथ सफल होईं तुम्हारे ।"

"ठीक है ।" कहकर गोविन्द राकेश के साथ बाँईं सड़क पर मुड़ गया
छज्जूराम अपनी दुकान की तरफ चला गया ।

रास्ते में राकेश ने गोविन्द से पूछा—"वह तुम्हें केले खिला रहा था,
हीं खाये, इन्कार क्यों कर दिया ।"

"क्यों खाऊँ? जरा सा काम करके केले खाना और मेहनताना वसूल
कोई अच्छी बात नहीं ।"

"पर वह तो खुशी से खिला रहा था ।"

"तो भी क्या हुआ ! मेरा मन नहीं मानता कि किसी का काम करके
दले में कुछ पाऊँ या पाने की आशा करूँ ।"

"बहुत भोले हो गोविन्द । केले भी नहीं खाये और उस मुन्शी के बच्चे
ें भी सुन आये । मैं होता तो उसकी मेज उल्टी कर देता, उसका चश्मा
ा, उसकी टोपी उछाल देता ।"

"फिर क्या होता?"

"होता क्या, उस मुंशी के बच्चे को सबक मिल जाता । वह सभी से
रने के लिये तैयार रहता है । हमेशा काटने को दौड़ता है, किसी से
बात नहीं करता ।"

"मुंशीजी हम लोगों से बड़े हैं, जरा इज्जत से बात करो । मुंशी का
हीं, मुंशीजी कहो । हम लोग पढ़ने जाते हैं हाथ में किताबें भी हैं, हमें
बड़ों का नाम इज्जत से लेना चाहिये । तुम्हारी यह तोड़ फोड़ वाली
मेरी समझ में नहीं आई ।"

—"कभी कभी तो तुम कमाल ही कर देते हो, गोविन्द ! वह आदमी
कुछ भी बकता रहे, और हमें कुछ भी नहीं कहा जाय, यह कैसे हो
। गलत आदमी और गलत काम के विरुद्ध तो खड़ा होना चाहिये ।"

—"ठीक है, मगर गलत आदमी को ठीक करने के लिए हमें गलत

मैंने आपको यहाँ का पूरा पूरा समाचार दे दिया है अब आप कृपा करके अपने परिवार को जल्दी ही अपने पास बुलाने का प्रबन्ध करें। बाकी सब कुशल है।
आपका—बैजनाथ।"

गोविन्द ने चिटठी पढकर छज्जूराम को लौटा दी। तब तक पीछे आते हुए राकेश ने गोविन्द से कहा—"गोविन्द, आज तो देर हो गई।"

गोविन्द ने पीछे मुड़कर देखा और कहा—"हाँ राकेश, आज देर हो गई है।"

छज्जूराम भी बोल पड़ा—"अच्छा गोविन्द भैया, तुम्हारा बहुत बहुत शुक्रिया!"

"इसमें शुक्रिया की क्या बात है, जरा सा काम था, कर दिया।"

"तो आओ, दुकान आ गई है, एक केला खाकर देखो कैसा मीठा है!"

"नही छज्जूरामजी, इसकी कोई जरूरत नही। अभी अभी घर से खाना खाकर आ रहा हूँ।"

"तो क्या हुआ, खाना खाने के बाद ही तो फलफूल खाया जाता है। आओ, एक आधा केला खाते जाओ।"

"बिल्कुल, बिल्कुल नही! मुझे स्कूल के लिए देर हो रही है, मैं तो अब सीधा स्कूल जाऊँगा।"

स्कूल का नाम सुनकर छज्जूराम को कुछ ध्यान आया। वह बोल पड़ा—"भैया, क्या मैं अब अपने बच्चो को नही पढ़ा सकता?"

"पढ़ा क्यो नही सकते? जरूर पढ़ा सकते हो। बच्चों को ही क्यों, चाहो तो तुम भी पढ़ सकते हो। कुछ ही वर्षों मे देखोगे कि हमारे देश में कोई निरक्षर और अनाड़ी नही रहेगा। सब पढ लिख कर शिक्षित हो जायेंगे। फिर चिट्ठी पढ़वाने के लिए किसी की खुशामदें नही करनी पड़ेगी। खुद लिख सकेंगे और खुद पढ़ सकेंगे।"

"मतलब यह है कि मैं भी पढ़ जाऊँगा और मेरे बच्चे भी पढ़ जायेंगे?" खुशी की उछाल में छज्जूराम ने पूछा।

"हाँ जरूर ! आपकी इच्छा है तो जरूर पढ़ जायेंगे । तुलसीदासजी ने तो कहा है—मनोरथ सफल होईं तुम्हारे ।"

"ठीक है ।" कहकर गोविन्द राकेश के साथ बाँई सड़क पर मुड़ गया और एकजूराम अपनी दुकान की तरफ चला गया ।

रास्ते मे राकेश ने गोविन्द से पूछा—"वह तुम्हें केले खिला रहा था, क्यों नहीं खाये, इन्कार क्यों कर दिया ।"

"क्यों खाऊँ? जरा सा काम करके केले खाना और मेहनताना वसूल करना कोई अच्छी बात नहीं ।"

"पर वह तो खुशी से खिला रहा था ।"

"तो भी क्या हुआ ! मेरा मन नही मानता कि किसी का काम कर उसके बदले मे कुछ पाऊँ या पाने की आशा करूँ ।"

"बहुत भोले हो गोविन्द । केले भी नही खाये और उस मुन्शी के बक की बातें भी सुन आये । मैं होता तो उसकी मेज उल्टी कर देता, उसका चश्मा तोड़ देता, उसकी टोपी उछाल देता ।"

"फिर क्या होता?"

"होता क्या, उस मुंशी के बच्चे को सबक मिल जाता । यह सभी से लड़ने मरने के लिये तैयार रहता है । हमेशा काटने को दौड़ता है, किसी से सीधे मुँह बात नहीं करता ।"

"मुंशीजी हम लोगो से बड़े हैं, जरा इज्जत से बात करो । मुंशी का बच्चा नहीं, मुंशीजी कहो । हम लोग पढ़ने जाते हैं हाथ मे किताबें भी हैं, हमें अपने से बड़ों का नाम इज्जत से लेना चाहिये । तुम्हारी यह तोड़ फोड़ वाली बात भी मेरी समझ मे नहीं आई ।"

—"कभी कभी तो तुम कमाल ही कर देते हो, गोविन्द ! यह आदमी किसी को कुछ भी बकता रहे, और इसे कुछ भी नहीं कहा जाय, यह कैसे हो सकता है । गलत आदमी और गलत काम के विरुद्ध तो खड़ा होना चाहिये ।

—"ठीक है, मगर गलत आदमी को ठीक करने के लिए हमें गल

तरीके अपना कर खुद गलती नहीं करना चाहिये। एक गलती को दूसरी गलती से नहीं सुधारा जा सकता।"

"तुम समझते क्यों नहीं ! अन्याय सहना भी एक पाप है। खुद गाँधी जी ने कहा था कि अन्याय करने वाले से अन्याय सहने वाला अधिक दोषी है।"

राकेश की बात सुनकर गोविन्द को हँसी आ गई। उसे हँसता हुआ देखकर राकेश ने पूछा—"मेरी बात पर तुम हँसते क्यों हो ?"

"इसलिए कि जो बात तुम मुझे समझाने की कोशिश कर रहे हो, वह बात खुद नहीं समझते। बड़े आदमियों की कही गई बातों का लोग बाग कभी कभी बड़ा गलत मतलब लगाते हैं।"

"मैंने झूठ कहा है क्या ? मैं तुम्हें किताब में दिखा सकता हूँ, जहाँ लिखा है कि गाँधी जी ने कहा था—अन्याय सहने वाला अन्याय करने वाले से अधिक दोषी है।"

"गाँधी ने जरूर कहा था, मगर तुम जिस ढंग से उस बात को समझे हो और मुझे समझा रहे हो, वह मेरे गले से नीचे नहीं उतर रही है।"

"एक सीधी सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आ रही है, यह जानकर मैं भी हैरान हूँ।"

"तुम्हारी बात सीधी नहीं टेढ़ी है। अन्याय का मुकाबिला गाँधी जी ने भी किया था, गलत बात के विरुद्ध गाँधी जी भी तनकर खड़े हुए थे, और अपने प्रयत्न में सफल भी हुए, मगर उन्होंने तोड़ फोड़ तो कभी नहीं की थी, किसी का चश्मा नहीं तोड़ा, किसी की टोपी भी नहीं उछाली। गलत आदमी और गलत बात का विरोध गलत ढंग और तरीके से नहीं किया था। हम तनकर किसी को नहीं झुका सकते, झुककर ही झुका सकते हैं।"

"कैसी बातें करते हो ! गाँधी जी का जमाना कुछ और था और आज वक्त कुछ और है। काँटे को काँटा ही निकाल सकता है।"

"ठीक है काँटा काँटे से निकलता है, मगर आँख में गिरा तिनका तो काँटे से नहीं निकल सकता। जिन्हें हम काँटा समझते हैं वे वास्तव में काँटा

नही है। हमारे गलत ढग से सोचने से ही हमें वह काँटा नजर आता है।"

"तुमसे अब कौन बहस करे गोविन्द, तुम ठहरे फर्स्ट क्लास स्टुडेन्ट। वाद-विवाद प्रतियोगिता में भी तुम अनेक बार विजयी हुए हैं, ऐसे में भला मेरी दाल तुम कहाँ गलने दोगे !"

"तुम्हारी दाल अगर सचमुच दाल है तो जरूर गलेगी।"

"तुम कुछ भी समझ लो, पर मैं तो सिर्फ इतना ही समझता हूँ कि बातों मे तुम से जीत सकना बहुत मुश्किल काम है। इतना होने पर भी मैं यह तो मानता ही हूँ कि तुम्हारे विचार सुथरे हुए और ऊँचे हैं, तभी तो हमारे स्कूल के न सिर्फ अध्यापक, बल्कि प्रधानाध्यापक भी तुम्हें बहुत चाहते हैं। तुम औरों से कुछ अलग ही हो गोविन्द, तुम से मिलकर और तुम से बात करके मन को एक तरह की खुशी होती है। मेरा मन तो यही चाहता है कि बस तुम से बातें ही करता रहूँ।"

"अच्छा तो तुम बातें बनाना जानते हो !"

"बात नही बना रहा, मन के सच्चे भाव कह रहा हूँ। अच्छा गोविन्द, एक बात तो बताओ?"

"कहो क्या बात है?"

"इस छोटी सी आयु मे तुम्हे इतनी बातें किसने सिखाई?"

"मेरी छोटी आयु है और मैं इतनी बातें सिख गया, यह सब मैं तो नही जानता, मगर इतना जरूर जानता हूँ कि मेरे पिताजी अनुशासन और शिष्टाचार के विषय मे जरा कट्टर हैं। मेरे द्वारा हुई किसी भी गलती अथवा दोष के लिये वे मुझे नही, बल्कि स्वयं अपने आप को दोषी मानते हैं और जब से मुझे इस बात का पता चला है, तब से मैं भी अनुशासन और शिष्टाचार के विषय मे बहुत सावधानी और सतर्कता से काम लेता हूँ।"

"तुम्हारी गलती के लिए भला वे अपने को दोषी क्यों मानते हैं?" राकेश ने जिज्ञासा भाव से पूछा।"

"उनका विश्वास है कि सन्तान पर माता पिता के संस्कार का प्रभाव

पड़ता है। माता पिता बच्चों को जैसा कुछ भी सिखायेंगे बच्चे वैसा ही करेंगे अगर सन्तान गलत काम करती है तो इसका अभिप्राय यह हो जाता है कि माता पिता ने उनमें अच्छी आदतें नहीं डालीं, उन्हें कुछ सिखाया नहीं, उनके अनुशासन और शिष्टाचार पर ध्यान नहीं दिया। सन्तान जब कुछ अच्छा काम करती है, तो नाम भी तो माता पिता का ही होता है। ठीक इसी तरह औलाद के अशिष्ट व अनुशासनहीन होने पर बदनाम भी तो माता पिता होते हैं। कभी भी और कहीं भी माता पिता की बदनामी न हो, इसी बात का विचार करते हुए मैं अनुशासन, शिष्टाचार और नम्रता का पालन करने में विश्वास करता हूँ।"

"इसका मतलब यह हुआ कि अगर मैं मुन्शीजी की मेज उलट देता हूँ, उनका चश्मा तोड़ देता हूँ और उनकी टोपी उछाल देता हूँ, तो लोग बाग मेरे माता-पिता को बुरा कहेंगे?" राकेश ने फिर पूछा।

"अवश्य कहेंगे। हमारे अच्छे बुरे कामों को देखकर या सुनकर लोग उनके बारे में जानना चाहते हैं। वे सबसे पहिले यही जानना चाहेंगे कि यह किसकी सन्तान है। तुमने तो स्कूल में कई बार देखा होगा और सुना होगा कि शरारती लड़के की जब कोई शरारत पकड़ी जाती है अथवा कोई खूबी सामने आती है, तब अध्यापक महोदय पहिले प्रश्न में उसका नाम पूछते हैं और दूसरे प्रश्न में पिता का नाम पूछते हैं। पिता का नाम पूछने से पहिले केवल यही अभिप्राय होता है कि वह कौन पिता है, जिसने इस बालक को ऐसा बनाया।"

"सचमुच तुम ठीक कहते हो गोविन्द! लगता है मुझे भी अब तुम्हारे चरण चिन्हों पर चलना पड़ेगा। अच्छा, यह बताओ कि अपनी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त क्या तुम कुछ अन्य पुस्तकों का अध्ययन भी करते हो?"

"हाँ, यह तो मैं नितान्त आवश्यक समझता हूँ।"

"मुझे भी वे पुस्तकें दिखाओगे?"

"देखने से क्या होगा, लाभ तो पढ़ने से होगा।"

"तो तुम मुझे पढ़ने के लिये दोगे?"

"अवश्य दूँगा।"

"कब दोगे ?"

"जब तुम चाहो।"

"तो आज स्कूल की छुट्टी के बाद मैं तुम्हारे साथ ही लौटूंगा और घर चलूंगा।"

"जरूर चलना।"

दोनो जल्दी जल्दी स्कूल की तरफ बढ़ रहे थे, मगर आज दोनो को देर थी।

"कदम उठाओ राकेश, आज हम लोगो को देर हो गई है, आज ही नये क जी आने वाले हैं। पहिले दिन ही देर से पहुँचे तो वे क्या कहेंगे।"

गोविन्द की बात राकेश की समझ मे आ गई। दोनों कदम मिलाकर से स्कूल की तरफ बढने लगे।

ooo

२

विद्या विनयेन शोभते

गोविन्द महात्मा गाँधी विद्यालय की ६वीं कक्षा में पढ़ता है। आयु होगी लगभग पन्द्रह वर्ष। उसके पिता रामनारायण ने, जो एक साधारण पोस्टमेन हैं, उसकी शिक्षा और आचार व्यवहार पर, आरम्भ से ही विशेष ध्यान रक्खा। माता भी धर्म-कर्म में आस्था रखने वाली महिला थी। अतः बचपन से ही उसे महाभारत तथा रामायण की कथायें सुनाती रही। कथायें सुनते सुनते गोविन्द के बाल मन पर महापुरुषों के चरित्र व गुणों का अच्छा प्रभाव पड़ा। उसके मन में भी महापुरुष बनने की इच्छा जागृत हुई।

अब वह बड़ा हो गया है और ६वीं कक्षा में पढ़ता है, इसलिए माँ से किस्से नहीं सुनता, बल्कि अच्छे अच्छे लेखकों की अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़कर माँ और पिताजी दोनों को सुनाता है। उसे देखकर उसकी बातें सुनकर, उसके व्यवहार से खुश होकर आसपास और मोहल्ले वाले उसकी प्रशंसा करते थकते नहीं। सभी की जबान पर यही चर्चा रहती है कि गोविन्द एक होनहार और सुशील बालक है।

यों तो गोविन्द समय का बहुत पाबन्द है, और हमेशा ही स्कूल समय पर पहुँचता है, मगर आज उसे देर हो गई। देर आलस के कारण नहीं, बल्कि सेवा भावना के कारण हुई। खाना खाकर वह ज्यों ही स्कूल के लिए पुस्तकें तैयार करने लगा, त्यों ही राधो काकी की चीख सुनाई दी। बाहर झाँककर देखा तो बेचारी सिर पर रक्खे पानी के घड़े समेत फिसल कर गिर पड़ी थी। गोविन्द दौड़कर बाहर आया, उसे उठाया और सहारा देकर नीम के नीचे वाले चबूतरे पर बैठा दिया राधो काकी का पाँव केले के छिलके पर पड़ गया था

वह केले खाने वाले को कोसने लगी—"सत्या नाश जाये इन कल मुँहो का ! केला खाकर छिलका रास्ते मे फेंक देते हैं। मैं तो कहूँ हाथ पाँव टूटें उसके जिसने यहाँ छिलका फेंका है।"

गोविन्द उसे समझाने लगा—"देख काकी, गाली मत दे। एक तो चोट लगी, ऊपर से गालियाँ दे रही है। किसी का बुरा सोचने से पहिले अपना ही बुरा होता है। देख तो, कोहनी से खून बह रहा है ठहर, मैं टिन्चर लाता हूँ।"

गोविन्द घर में टिन्चर लेने गया। राधो काकी गालियाँ देती ही रही। उसकी गालियाँ सुनकर सामने वाले मकान से एक पंडितनुमा व्यक्ति बाहर निकला और गरज कर बोला—"क्यों बक बक किये जा रही है ? छिलका रास्ते में पड़ा था, तो तेरी आँखें क्या आसमान में टिकी हुई थीं ! आँख खोल-कर नहीं चला जाता तुझसे।"

"अच्छा, तो यह तुम्हारी करतूत है ! मेरी आँखों को दोष देते हो, अपनी अक्ल का दरवाजा खोलकर क्यों नहीं रखते। रास्ते में छिलका फेंक दिया, किसी के हाथ पाँव टूटें, तुम्हारी बला से !"

"आँखें खोलकर नहीं चलोगी तो ऐसा ही होगा।"

"अच्छा ! उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे ! मैं कहती हूँ कि तुम पंडित बने फिरते हो, लोगों को ज्ञान सिखाते हो, धर्म कर्म की बातें करते हो पर जरा सी बात खुद नहीं समझते कि रास्ते मे केले का छिलका नहीं फेंकना चाहिये। भगवान ने मुझे क्या इसलिए आँखें दी है कि तुम्हारे फेंके हुए केले के छिलकों को ही देखती रहूँ। मेरी कोहनियाँ छिल गई, मेरे घुटनों में चोट आ गई, अब मेरे घर का काम कौन करेगा !"

"बक मारने और बड़बड़ाने की तो तेरी पुरानी आदत है। तू अक्ल के पीछे लट लिये फिरती है। वह आगे-आगे और तू पीछे पीछे। हाथ से लठ नीचे रखेगी, तो अक्ल पास आयेगी।"

"ऐ पंडितजी ! जबान मुँह में रखकर बात करो, कह देती हूँ हाँ ! अपनी इज्जत अपने हाथ होती है। रख पत रखा पत; समझे ! किसी तीसरे आदमी से पूछो कि अक्ल का दुश्मन कौन है मैं या तुम।"

तब तक गोविन्द टिन्चर और रूई लेकर वहाँ आ पहुँचा। वह राधो काकी से बोला—"काकी बस कर, ज्यादा बोलेगी और जोर से बोलेगी तो खून भी ज्यादा और जोर से निकलेगा। चुप हो जायगी, तो खून भी बन्द हो जायेगा।"

"सच !" आँखें फैलाकर राधो काकी ने पूछा।

"एकदम सच्च ! एक चुप सौ को हराती है।"

"अरे गोविन्द बेटा, मैं भला कोई झगड़ालू हूँ ! मैं तो झगड़े से कोसों दूर भागती हूँ। पर ये पंडितजी कहते हैं कि आ बैल मुझे मार !"

"बैल क्या, तू तो साँड है साँड !" कहकर पंडितजी अपने घर में घुस गये और दरवाजा बन्द कर लिया।

राधो काकी उसकी यह बात सुनकर जलभुन गई। वह तेवर बदल कर हाथ हवा में नचाती हुई बोली—"अरे, ठहर रे पंडितवा, भागा कहाँ जाता है। दरवाजा क्यों बन्द———।"

गोविन्द बीच में ही बोल पड़ा—"काकी फिर वही बात ! कहा न कि गुस्सा थूक दे। तू तो पंडितजी से उम्र में बड़ी है। समझदार लोग कहते हैं कि क्षमा बड़न को चाहिये और छोटों को उत्पात।"

"पर बेटा———।"

"काकी बोल मत, नहीं तो खून ज्यादा निकलेगा।"

"अच्छा बेटे, अब नहीं बोलूँगी।"

गोविन्द ने रूई से काकी की छिली हुई कोहनी पर चिपके खून को पोंछा। दो तीन बार खून पोंछने के बाद टिन्चर लगाया। टिन्चर लगने पर काकी हुई-मुई करने लगी। उसने दाँत भींच लिये, होंठ काट लिए और जब धैर्य का बाँध टूट गया तो वह उठी—"भगवान समझेगा इस पंडित को ! राम करे किसी दिन इसके भी———।"

"नहीं काकी, नहीं ! बार बार कहता हूँ कि दूसरों को कोसना बहुत बुरी बात है। दूसरों के बारे में सोचा हुआ बुरा अपने ही सिर पर आ पड़ता है। तुम बड़ी हो मैं छोटा हूँ, तुम्हें बार बार समझाते हुए मुझे भी शर्म

ती है।"

मोहल्ले के कुछ आदमी और स्त्रियाँ भी वहाँ जमा होने लगे, मगर विन्द जल्दी मे था; इसलिए टिन्चर लगाकर जल्दी ही वहाँ से चल दिया।

घर मे आकर जल्दी जल्दी पुस्तकें सँभाली। बाहर आया तो राधो ाकी ने आशीष और दुआएँ देने के लिये ठहरा लिया। वह बोली—"तू बडा क लड़का है मैया, भगवान तुझे लम्बी उम्र दे। तू पढ लिख कर बहुत बड़ा दमी बने। मोटरो मे घूमें और बगलों मे रहे।"

"मोटरो मे घूमने से और बगलों मे रहने से ही आदमी बड़ा नहीं होता ाकी। गाँधीजी झोपडी मे रहते थे और विनोबा भावे हजारो मील पैदल लते हैं, फिर भी दुनिया उन्हे महापुरुष मानती है। यो तो तुम भी महान स्ती हो, मगर कभी कभी देवता आ जाते हैं, तो प्रवचन करने लगती हो। च्छा काकी, अब मैं चलूंगा, मुझे स्कूल के लिये देर हो रही है।"

"अच्छा बेटा, जा पढ, खूब पढ!"

गोविन्द वहाँ से चला तो पोस्ट ऑफिस के पास आकर मुन्शीजी को छज्जूराम पर बरसते हुए देखा। यह देख कर उसके मन की शय्या पर सोयी हुई दया देवी जाग पड़ी। स्वभाव के अनुसार छज्जूराम की सहायता करने और चिट्ठी मे समय लग गया। फिर राकेश का साथ हो गया। आज कक्षा े नये अध्यापक महोदय आने वाले थे। यह भी चिन्ता थी कि पहिले ही दिन उनकी कक्षा मे विलम्ब से पहुँचने पर वे क्या समझेंगे।

जब राकेश और गोविन्द दोनो कक्षा के दरवाजे पर पहुँचे तो देखा कि नये अध्यापक महोदय आ चुके थे और प्रत्येक विद्यार्थी से उसका नाम पूछकर परिचय प्राप्त कर रहे थे। गोविन्द ने कक्षा के दरवाजे के बाहर खडे होकर पूछा—"मान्यवर, मैं भीतर आऊँ?"

नये अध्यापक महोदय का ध्यान बँटा और उन्होंने दरवाजे की ओर देखा। फिर सिर से पाँव तक गोविन्द को देखकर कहा—"चले आओ।"

इस तरह राकेश को भी भीतर आने की आज्ञा मिल गई, लेकिन इन दोनों को अपने स्थान पर बैठने की आज्ञा नहीं मिली। इन्हे एक ओर खड़े रहने

की है। मैं ठीक कह रहा हूँ न ?"

"ऐसा तो नहीं है, सर।"

"ऐसा ही है। ऊपर से भले ही ऐसा न लगता हो, पर सचमुच ऐसा ही है।"

"ऐसा तो बिल्कुल भी नहीं है सर।"

"अगर ऐसा न होता, तो तुम अपने को निर्दोष बताने के लिये माताजी का दोष पूरी कक्षा में इतने विद्यार्थियों के सामने न बखानते। मान भी लिया जाय कि तुम्हारी माताजी को किसी कारण आज खाना बनाने में देर हो गई इसलिये तुम्हें भी देर हुई, तो भी तुम चुप रह सकते थे। मैं तुम्हें दंड तो नहीं दे रहा था, लेकिन तुम से चुप नहीं रह गया। अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिये तुम अपने से बड़ों के दोष को सामने रखने में तनिक भी संकोच नहीं करते, यह तुम्हारे चरित्र का एक बहुत बड़ा दोष है, इससे बचो अन्यथा यह तुम्हें पतन के मार्ग पर धकेल देगा। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"जी राकेश।"

"नाम बहुत प्यारा है—राकेश, यानि चन्द्रमा। चन्द्रमा अंधकार को खाता है और बदले में प्रकाश और चाँदनी उगलता है। तुम्हें भी अपने नाम के अर्थ की रक्षा करनी चाहिये। जाओ, बैठो अपने स्थान पर।"

राकेश जाकर अपने स्थान पर बैठ गया, लेकिन गोविन्द अभी तक ज्यों का त्यों उसी स्थान पर सिर नीचा किये खड़ा रहा। शिक्षक महोदय उसकी ओर मुड़कर बोले—"क्या तुम्हें भी किसी और के कारण देर हुई ?"

"नहीं सर।"

"यानि तुम अपना दोष मानते हो ?"

"जी हाँ, सर।"

"शाबाश ! तुम्हारी विनयशीलता से लगता है कि तुम जीवन में अवश्य ही उन्नति करोगे। भविष्य में ध्यान रखो और समय पर आओ। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"गोविन्द !"

"गोविन्द यानि कृष्ण, मुरलीधर, नटवर, गिरधर ! साक्षात भगवान कृष्ण का रूप हो। जाओ, बैठो अपनी जगह पर।"

गोविन्द भी अपनी जगह पर जा बैठा।

अब शिक्षक महोदय ने सभी विद्यार्थियों को सम्बोधित करके कहा— "प्यारे विद्यार्थियों, मैं तुम्हें विषय सम्बन्धी कुछ ज्ञान दूं या पढाऊं इससे पहिले मैं एक बहुत आवश्यक बात कहना चाहूंगा। पानी भरने के लिये जब घड़े को नल के नीचे रक्खा जाता है, तो कुछ ही समय में घड़ा पानी से भर जाता है, लेकिन उस घड़े की पेंदी में छेद होगा, तो घड़ा कभी भी नहीं भरेगा। नल से पानी आता जायगा और नीचे के छेद से बाहर बहता जायगा। मेरा अभिप्राय यह है कि विद्यार्थियों को विनयशील अवश्य होना चाहिये। बिना विनय के विद्या नहीं आती। शास्त्र में लिखा है—'विद्या विनयेन शोभते' विनय विद्या का आभूषण है—विद्या विनय द्वारा ही शोभा पाती है। तुम लोगों का मानस वह घड़ा है जिसमें तुम विद्या और ज्ञान का जल भरना चाहते हो। विनय एक प्रकार से घड़े का खुला हुआ मुँह है, जो विद्या रूपी जल को अधिक से अधिक और शीघ्र से शीघ्र अपने में समा लेने में समर्थ है; जब कि अविनय मानस रूपी घड़े का वह छेद है, जिसमें से होकर विद्या रूपी जल बह जाता है।"

सभी विद्यार्थी शिक्षक महोदय की बात बहुत ध्यान से सुन रहे थे। और लगता था कि सभी प्रभावित भी हो रहे हैं। उन्होंने आगे फिर कहा—"पता नहीं क्यों, आजकल कुछ बालकों में अपने सम्मान को माता-पिता और गुरुजनों के सम्मान से तोलने की आदत होती जा रही है। बालक तो प्रेम और स्नेह के पात्र होते हैं, अपने माता-पिता, गुरुजनों और बड़ों के सम्मुख तो उन्हें सम्मान के साथ नतमस्तक होकर खड़े रहना चाहिये। इसी में उनके विनय की महानता व सार्थकता है तथा बड़ों के सम्मान का गौरव है। इतिहास साक्षी है कि वे ही व्यक्ति अमर हुए, महापुरुष कहलाये, और उन्होंने ही महान कार्य किये जो अपने बाल्यकाल और विद्यार्थी-काल में विनयशील रहे। तो मेरे प्यारे विद्यार्थियों, तुम को भी विनय-धर्म ग्रहण करना अति आवश्यक है। तुम में से प्रत्येक को दीपक

बनकर रोशनी और फूल बनकर खुशबू देनी है। इतिहास के पृष्ठो मे अपना नाम जोड़ना है। बस, मैं इतनी बात ही कहना चाहता था। मेरा विचार है तुम सब लोग मुझ से सहमत होगे?"

"जी हाँ!" कक्षा मे सभी का सामूहिक स्वर गूँज उठा।

"तो तुम लोग मेरी बात मानोगे?"

"जरूर मानेंगे।" सभी ने एक साथ कहा।

तत्पश्चात शिक्षक महोदय ने विषय से सम्बन्धित कुछ बातें की, किन्तु शीघ्र ही घटी बज गई। विद्यार्थियो से विदा लेकर वे चले गये। विद्यार्थी उनके विषय मे चर्चा करने लगे। सभी को नये शिक्षक की बातें बहुत पसन्द आई।

अवकाश के समय एक चपरासी गोविन्द को पूछता हुआ कक्षा मे आया। वह उस समय बाहर जा रहा था। एक अन्य विद्यार्थी ने उसे आवाज दी। चपरासी ने गोविन्द से कहा—

"तुम्हे शर्माजी बुला रहे हैं।"

"कौन शर्माजी?" उसने चौक कर पूछा।

"वही नये अध्यापक, जो आज आये हैं।"

"कहाँ है?"

"अध्यापक-कक्ष मे।"

"चलो।"

गोविन्द चपरासी के साथ अध्यापक-कक्ष की ओर चल दिया। शर्माजी कक्ष के बाहर ही खड़े थे। उन्होने मुस्कराकर उसकी तरफ देखा, फिर उसे साथ लेकर पुस्तकालय की ओर चल दिये। वहाँ जाकर वे एक कुर्सी पर बैठ गये, फिर गोविन्द को भी पास की कुर्सी पर बैठाते हुए बोले—"गोविन्द, मुझसे भूल हो गई बन्धु! मैंने कक्षा मे तुम्हे बहुत अधिक डाँट दिया।"

गोविन्द सकपका गया, फिर बोला—'यह आप कह क्या रहे हैं सर! मुझे तो बिलकुल नही लगा कि आपने डाँटा है और अगर डाँटा भी है, तो इसमे क्या हो गया! आप गुरु हैं, डाँट भी सकते हैं।"

"पर व्यर्थ में डाँटना तो अच्छी बात नहीं।"

"मैं तो गुरुजनों की डाँट को व्यर्थ नहीं समझता। मुझे तो ऐसे अव
की तलाश रहती है, जब गुरुजनों की डाँट खाने को मिले। इस डाँट और प
कार में तो अमृतवाणी और भविष्यवाणी छिपी रहती है। पथ के अन्धकार
दूर करने के लिये आलोक और चेतना को जाग्रत करने के लिये एक सन
छिपा रहता है। सच मानिये सर, मुझे नहीं मालूम कि मुझे आपने क्‍यों ड
है, अगर आप डाँटते तो मैं आपका उपकार मानता।"

शर्माजी ने अपने सम्मान में गोविन्द के विनयपूर्ण शब्द सुने, उस
विचार जाने और उसकी भावना को समझा, तो उसका मन खुशी से गद्
हो उठा। उनकी आँखें गोविन्द के प्रति स्नेह और प्रेमाश्रु से गीली हो उठीं
वे प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहने लगे—"सचमुच जैसा सुना थ
वैसा ही पाया। अध्यापक-कक्ष में तुम्हारे नाम की बड़ी चर्चा है। तुम्हारे ब
में बहुत कुछ अच्छा ही अच्छा सुना। वह सब सुनकर मुझे लगा कि तुम्हें ड
कर मैंने भारी भूल की है। अपने मन के बोझ को हल्का करने के लिये ही मैं
तुम्हें बुलाया है।"

सिर झुकाकर गोविन्द ने कहा—"आपको लगा कि आपने मुझे डाँट
तो आपका मन भारी हो गया। मैं तो कहता हूँ कि आप अपने पाँव का जूत
निकाल कर मेरे सिर पर बरसायेंगे तो भी मैं सिर नहीं उठाऊँगा, बल्कि जूत
की मार को आपका आशीर्वाद और कृपा ही समझूँगा।"

"नहीं, गोविन्द नहीं! तुम तो आँखों में बैठाने योग्य बालक हो।"
कहकर शर्माजी ने कुर्सी से उठते हुए उसे अपने अंक में भर लिया।

पुस्तकालय में बैठे कुछ विद्यार्थी इस भावनामय-दृश्य को देखकर प्रभा-
वित हुए। यों तो वे पहिले से ही गोविन्द के व्यक्तित्व से प्रभावित थे।

गोविन्द ने जब देर से आने का कारण शर्माजी को बताया तो वे और
भी अधिक प्रसन्न हुए और कहने लगे—"तुम्हारी बुद्धि रचनात्मक है गोविन्द!
... निर्माण की दिशा में है। यह मेरा ठोस विश्वास है कि अपने
और विनयशीलता के बल पर एक दिन तुम अवश्य महान बनोगे। तुम जैसे

यों को देखकर मन बहुत प्रसन्न होता है। ईश्वर करे तुम सदा उन्नति
ौर अपने माता पिता का नाम ऊँचा करो। क्या नाम है तुम्हारे पिताजी

"राम नारायण जी।"

"क्या काम करते हैं?"

"पोस्टमैन हैं।"

"बहुत अच्छा! कितने भाई-बहिन हो?"

"जी ऐसे तो मैं इकलौती सन्तान हूं, लेकिन सभी को अपना भाई-बहिन
ा हूँ, इसलिये यह संख्या तो बड़ी है, मैं बता ही नहीं सकता।"

गोविन्द की बात सुनकर शर्माजी ठहाका मारकर हँस पड़े। घंटी बज
। गोविन्द उनसे विदा लेकर अपनी कक्षा की ओर चल दिया।

३

चमत्कार को नमस्कार

छुट्टी के बाद दोनों मित्र घर लौट रहे थे। रास्ते में गोविन्द ने राकेश से कहा—"राकेश, तुम्हें सर के सामने देरी से आने के लिए बहस नहीं करनी चाहिये थी, वे तुम्हें दण्ड भी नहीं दे रहे थे।"

"हाँ गोविन्द, मैं भी बाद में सोचता रहा कि मैंने अच्छा नहीं किया। मैं मन ही मन में बहुत पछता रहा हूँ। अब भविष्य में मैं सावधान रहूँगा।"

चलते चलते दोनों ने देखा कि सामने से एक काफिला चला आ रहा है और आसपास के कुत्ते इकट्ठे होकर जोर जोर से भौंक रहे हैं। आश्चर्य और गौर से इधर उधर देखने लगे। काफिला जब पास आया तो मालूम हुआ कि वह किसी सर्कस का काफिला है।

एक विदेशी 'जेमन सर्कस' शहर के राजा-बाग में शुरू होने वाला था। उसी सर्कस का काफिला राजा-बाग की ओर आ रहा था। सबसे आगे हाथी थे। हाथी के पीछे ऊँट और घोड़े थे। इसके बाद पिंजड़ेनुमा गाड़ी में शेर थे, जो कभी कभी जोर से गुर्रा उठते थे। इसके पीछे रीछ का पिंजरा, उसके पीछे बन्दर और कुत्ते थे।

कुछ बच्चे भी इकट्ठे होकर तालियाँ बजाते और किलकारी मार रहे थे, कुत्तों का भौंकना भी जारी था। ऐसा लगता था कि नगर के सभी कुत्ते 'जेमन सर्कस' के आगमन का विरोध-प्रदर्शन कर रहे हैं। और तब आकर राकेश ने गोविन्द से कहा—"अरे! इन कुत्तों को क्या हुआ है!"

"कुत्ते हैं, भौंक रहे हैं, भौंकना इनका काम है।"

"पर समझ मे नही आता कि ये किस पर भौंक रहे, वे सब भी तो जानवर ही हैं, फिर इतना गुस्सा क्यो?"

"तुम ऐसा समझते हो, मगर भौंकने वाले ये कुत्ते ऐसा नही समझते। इनके विचार से जो प्राणी इनकी बोली समझे, ये उसे ही अपना समझते हैं। दूसरों को अपना नहीं समझते।" गोविन्द ने कहा।

बात राकेश की समझ मे नही आई। वह बोला—"तुम्हारी यह बात मुझको बिल्कुल नही जँची। सर्कस के सभी जानवर अलग अलग जात के हैं, मगर कोई भी एक दूसरे पर गुस्सा नही करता। सभी चुपचाप चले जा रहे हैं।"

गोविन्द ने समझाते हुए कहा—"इसका कारण यह है कि इन सभी जानवरो ने 'फेमस सर्कस' के झंडे के नीचे आकर अपनी बोली, अपनी जात और अपने स्वभाव को इस तरह घोल-मेल दिया है कि अब एक दूसरे पर नाराज होने का प्रश्न ही नही उठता। अब इनमें भिन्न भिन्न रूप से कोई भी हाथी, घोड़ा, ऊँट, शेर, रीछ, बन्दर या कुत्ता नही है, बल्कि सब मिलकर 'फेमस सर्कस' हैं। बाहर भौंकने वाले ये कुत्ते इस समुदाय से अलग हैं और सर्कस के जानवरों को अपने से भिन्न समझते हैं, इसलिये भौंक रहे हैं। यही सब कुत्ते यदि 'फेमस सर्कस' मे काम कर रहे होते, तो उसी प्रकार चुप और शान्त होते, जिस प्रकार सर्कस के अन्य जानवर शान्त व चुप हैं।"

गोविन्द की बात के सार को समझते हुए राकेश ने कहा—"अच्छा, तो यह बात है! अपना जातिगत स्वभाव और अपनी भाषा, सभी कुछ 'फेमस-सर्कस' को अर्पण करने के बाद आपसी भेद-भाव, मन-मुटाव और गुस्सा करने का प्रश्न ही खत्म हो गया है।"

'हाँ भेद-भाव खत्म हुआ, तभी एक संगठन व शक्ति बनी, जिसका नाम 'फेमस सर्कस' है।" गोविन्द ने फिर समझाया।

राकेश ने बात को और भी अधिक समझते हुए कहा—"यह तो तुमने बड़े पते की बात कही। जानवर भी एक संगठन के नीचे आकर 'फेमस सर्कस' की एक शक्ति बन गये। ये ही जानवर अगर जगल मे होते तो इधर उधर मारे मारे फिरते। कभी अपने से बड़े जानवर का भय, कभी शिकारी की गोली का

डर तो कभी खाने की चिन्ता। मगर, यहाँ तो इन्हें अच्छी तरह खिला-पिलाया जाता है, इनकी तन्दुरुस्ती का ध्यान रक्खा जाता है, इन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। अच्छा खेल दिखाने वाले जानवरों के फोटो और नाम अखबारों में छपते हैं। खैर! छोड़ो इन बातों को। आओ, जरा मगन दुकान से कुछ चाट पकौड़ी खा लें। आज तो स्कूल में भी दही-पकौड़ी नहीं खा सका।"

"इसका मतलब यह हुआ कि तुम रोज ही चाट पकौड़ी खाते हो?"

"हाँ, थोड़ी चाट तो रोज़ ही खाता हूँ, बिना खाये मजा नहीं आता।"

"अब मैं समझा कि रोज़ तुम्हारे सिर और पेट में दर्द क्यों रहता है कभी आँख दुखती है, तो कभी कान दुखता है। इस उभरती उम्र में भी तुम्हारे शरीर की सारी हड्डियाँ दिखाई दे रही हैं।"

"पर यह सब चाट खाने से होता है क्या?" राकेश ने पूछा।

"और नहीं तो क्या! सारी बीमारियों की जड़ पेट की खराबी है बेकार की चीजें खाने से पेट पर बेकार बोझ पड़ेगा तो पेट की मशीन खराब होगी ही।"

"तुम तो छोटी सी उम्र में ही सत बन गये हो, गोविन्द।"

"तुम्हारा मतलब है कि इस छोटी सी उम्र में मुझे दुष्ट बन जाना चाहिये?"

"दुष्ट बनने की बात नहीं करता, मगर जीवन का आनन्द तो लेना चाहिये। खाने पीने खेलने कूदने की यही तो उम्र है।"

"मैं दोनों वक्त खाना खाता हूँ, फल भी खा लेता हूँ, सुबह-शाम दूध पीता हूँ प्रतिवर्ष स्कूल के खेल-कूद में भाग लेता हूँ और ईनाम पाता हूँ। इतना सब करने के बाद और क्या बाकी रहता है? क्या चाट-पकौड़ी न खाने से यह सब व्यर्थ माना जायगा? जीवन का आनन्द तुम से ज्यादा मैं ले रहा हूँ। चाट पकौड़ी का छोटा सा आनन्द लेने के लिये पेट और सिर-दर्द से तुम्हें उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। मेरे साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं है।"

राकेश गोविन्द द्वारा बताई गई बातों से प्रभावित हुआ। उसे सदा

कि गोविन्द सत्य ही तो कह रहा है। वह बोला—"ऐसी बात है तो मैंने भी आज से चाट खाना छोड़ा।"

"फिर तो दर्द भी तुम्हारा पेट और सिर छोड़कर चला जायगा। यह भी समझने की बात है कि हमें अपने राष्ट्र को मजबूत बनाने से पहिले अपने स्वास्थ्य को मजबूत बनाना होगा। अस्वस्थ व अशक्त नौजवान अपने कंधों पर राष्ट्र के उत्तरदायित्व का भार नहीं उठा सकते। राष्ट्र की धमनियों में स्वच्छ और लाल लहू प्रवाहित करने में पहिले हमें अपने शरीर के लहू को स्वच्छ रखना होगा।"

अब तक राकेश का ध्यान कहीं और उलझ गया था। एक भिखारी बालक को, जो भूठा पत्ता चाट रहा था, लक्ष्य करके उसने कहा—"देख गोविन्द वह भिखारी पत्ता चाट रहा है।"

गोविन्द ने उधर देखा। ऐसा लगा कि उसके मन की सारी करुणा सिमट कर उसकी आँखों में आ गई। राकेश ने पूछा—"क्या हुआ गोविन्द ?"

वह बोला—"बेचारा इस उम्र में भीख माँगता फिरता है !"

इस पर राकेश ने लापरवाही से कहा—"इसके लिये हम क्या कर सकते हैं भला !"

गोविन्द ने एक असन्तोषपूर्ण दृष्टि से राकेश की ओर देखा फिर बोला—"हम नहीं कर सकते तो और कौन करेगा। पोस्ट-ऑफिस में तुम मुंशी जी की गलत बात पर उबल पड़े थे और तोड़ फोड़ व उलट-पुलट के लिये तैयार हो गये। तुम्हारी शक्ति क्या केवल तोड़ फोड़ करना ही जानती है, कुछ बनाना कुछ रचनात्मक कार्य करना नहीं जानती।"

"इसमें रचनात्मक काम करने लायक है ही क्या ! भीख माँगना तो युगों से चली आ रही और सारी दुनिया में फैली हुई बीमारी है। इसे दूर करने के लिये कोई क्या कर सकता है। मुंशी जी तो अकेले आदमी हैं, उन्हें तो चाहे जब सीधा किया जा सकता है।"

"मुंशी जी के पीछे लगे हो, मेरी बात समझने की कोशिश क्यों नहीं करते।"

"तुम्हारी जितनी समझ और बुद्धि मेरे पास नहीं है।"

"पर मैं बुद्धि की नहीं, भावना की बात कर रहा हूँ। हमें चाहिये
ऐसा कुछ करें जिससे वे भिखारी अपना वर्तमान घृणित जीवन त्याग कर
अच्छा जीवन जी सकें।"

गोविन्द की बात सुनकर राकेश को जोर की हँसी आ गई। गोवि
उसका मुंह देखने लगा, फिर पूछा—तुम हँसते क्यों हो ?"

"कभी कभी तुम भी ऐसी बातें करने लगते हो कि हँसी आ जाती है।

"हँस लो, मगर एक दिन आयगा, जब मैं तुम्हें अपनी भावना सा
करके दिखाऊँगा।"

"तुम्हारी भावना तो बहुत ऊँची है, लेकिन भावना के पीछे छिपा हुआ
काम बहुत मुश्किल है"

"मेरी भावना को जब तक प्रोत्साहन और प्रश्रय नहीं मिलता, तब तक
ही मेरा काम मुश्किल है, लेकिन जिस घड़ी मुझे सहयोग मिलना आरम्भ होगा
उसी घड़ी मेरा काम आसान हो जायगा और मेरी भावना साकार हो जायगी।"

राकेश उत्साह पूर्वक बोला—"अगर ऐसी बात है, तो मैं तुम्हें सहयोग
देने के लिये तैयार हूँ।"

"तुम मेरा साथ दोगे ?"

"हाँ दूंगा।"

"काम मुश्किल देखकर पीछे तो नहीं हटोगे ?"

"हरगिज नहीं।" दृढ़ स्वर में राकेश ने कहा।

"तो मिलाओ हाथ।" गोविन्द ने हाथ आगे बढ़ाया।

"यह लो !"

दोनों ने हाथ मिलाया। लगता था कि किसी शुभ उद्देश्य की पूर्ति के
ें दृढ़-प्रतिज्ञ हुए हैं।

ि - पूछ बैठा—"राकेश, तुम चाट खिला रहे थे ?"

[

"पर तुमने तो इन्कार कर दिया और हमेशा के लिये मेरी भी
र दी।"

"ठीक है, यह बताओ चाट के लिये जेब में पैसे कितने हैं ?"

"है एक रुपया।"

"आठ आने मेरे पास भी हैं, आओ वापिस चलें।"

आश्चर्यचकित होकर राकेश ने पूछा—"पर कहाँ ?"

"आओ तो।"

गोविन्द उसे वापिस ले चला। राकेश हैरानी से उसका मुहं देख
था। दोनों वापिस चाट की दुकान के पास पहुँचे। सामने वही भिखारी
खड़ा था। उसे देखकर गोविन्द बोला—"सुनो !" बालक ठिठक
आवाज देने वाले को कृपालु दाता समझकर उसने कुछ पाने की आशा
आगे कर दिया।

"क्या चाहिये ?" गोविन्द ने पूछा।

"कुछ देओ बाबूजी, भूख लगी है, भगवान तुम्हारा भला करे !
भिखारी बालक ने रटेरटाये शब्दों में गिड़गिड़ाकर कहा।

"आओ हमारे साथ।"

दाता के इस अनोखे व्यवहार पर भिखारी बालक कुछ हैरान
उसकी परेशानी देखकर गोविन्द ने कहा—"डरो मत, हम तुम्हे खाने
देंगे।"

इस नये दाता से आश्वासन और निमंत्रण पाकर वह खुश हो
खुशी खुशी वह दोनों के साथ चल दिया। राकेश अभी तक कुछ नहीं
सका था।

गोविन्द ने भिखारी बालक से पूछा—"क्या नाम है ?"

"गगू।"

"कहाँ रहता है ?"

"तुम्हारी जितनी समझ और बुद्धि मेरे पास नहीं है।"

"पर मैं बुद्धि की नहीं, भावना की बात कर रहा हूँ। हमें चाहिये कि ऐसा कुछ करें जिससे ये भिखारी अपना वर्तमान घृणित जीवन त्याग कर कुछ अच्छा जीवन जी सकें।"

गोविन्द की बात सुनकर राकेश को जोर की हंसी आ गई। गोविन्द उसका मुंह देखने लगा, फिर पूछा—तुम हंसते क्यों हो?"

"कभी कभी तुम भी ऐसी बातें करने लगते हो कि हंसी आ जाती है।"

"हँस लो, मगर एक दिन आयगा, जब मैं तुम्हें अपनी भावना सत्य करके दिखाऊँगा।"

"तुम्हारी भावना तो बहुत ऊँची है, लेकिन भावना के पीछे छिपा हुआ काम बहुत मुश्किल है"

"मेरी भावना को जब तक प्रोत्साहन और प्रश्रय नहीं मिलता, तब तक ही मेरा काम मुश्किल है, लेकिन जिस घड़ी मुझे सहयोग मिलना आरम्भ होगा, उसी घड़ी मेरा काम आसान हो जायगा और मेरी भावना साकार हो जायगी।"

राकेश उत्साह पूर्वक बोला—"अगर ऐसी बात है, तो मैं तुम्हें सहयोग देने के लिये तैयार हूँ।"

"तुम मेरा साथ दोगे?"

"हाँ दूंगा।"

"काम मुश्किल देखकर पीछे तो नहीं हटोगे?"

"हरगिज नहीं।" दृढ़ स्वर में राकेश ने कहा।

"तो मिलाओ हाथ।" गोविन्द ने हाथ आगे बढ़ाया।

"यह लो!"

दोनों ने हाथ मिलाया। लगता था कि किसी शुभ उद्देश्य की पूर्ति के

"पर तुमने तो इन्कार कर दिया और हमेशा के लिये मेरी भी छुट्टी कर दी।"

"ठीक है, यह बताओ चाट के लिये जेब मे पैसे कितने है ?"

"है एक रुपया।"

"आठ आने मेरे पास भी है, आओ वापिस चलें।"

आश्चर्यचकित होकर राकेश ने पूछा—"पर कहाँ ?"

"आओ तो।"

गोविन्द उसे वापिस ले चला। राकेश हैरानी से उसका मुह देख रहा था। दोनों वापिस चाट की दुकान के पास पहुँचे। सामने वही भिखारी बालक खड़ा था। उसे देखकर गोविन्द बोला—"सुनो !" बालक ठिठक गया। आवाज देने वाले को कृपालु दाता समझकर उसने कुछ पाने की आशा से हाथ आगे कर दिया।

"क्या चाहिये ?" गोविन्द ने पूछा।

"कुछ देओ बाबूजी, भूख लगी है, भगवान तुम्हारा भला करे !" उस भिखारी बालक ने रटेरटाये शब्दो मे गिड़गिडाकर कहा।

"आओ हमारे साथ।"

दाता के इस अनोखे व्यवहार पर भिखारी बालक कुछ हैरान हुआ। उसकी परेशानी देखकर गोविन्द ने कहा—"डरो मत, हम तुम्हे खाने के लिये देंगे।"

इस नये दाता से आश्वासन और निमंत्रण पाकर वह खुश हो गया। खुशी खुशी वह दोनो के साथ चल दिया। राकेश अभी तक कुछ नही समझ सका था।

गोविन्द ने भिखारी बालक से पूछा—"क्या नाम है ?"

"गंगू।"

"कहाँ रहता है ?"

"कहाँ सोता है ?"

"कभी नाले पर, कभी फुटपाँथ पर, कभी स्टेशन पर।"

"माँ-बाप कहाँ हैं ?"

"नहीं हैं, मर गये।"

सुनकर गोविन्द के मन को धक्का सा लगा। वह एक दुकान पर अ ठहर गया। वहाँ से कुछ बिस्कुट खरीदे और गगू के हाथ पर रख दिये। वहुत खुश हुआ और बिस्कुट खाने लगा। बिस्कुट खाते खाते चलने को तो गोविन्द ने कहा—"बस, और कुछ नहीं ?"

गगू ने सिर हिलाकर कुछ और खाने की स्वीकृति दी।

पास ही एक ठेले से चार केले खरीदकर गोविन्द ने उसके हाथ पर दिये। इस बार तो वह खुशी में उछल ही पडा। गोविन्द ने उससे पूछा "हमारी एक बात मानो, तुम्हे रोज ऐसी ही अच्छी अच्छी चीजें खाने मिलेंगी।"

"मानूंगा" बिस्कुट भरे मुँह से गगू बोला।

"तो आज से भीख मागना छोड दो।"

गगू का मुँह चलते चलते रुक गया। भीख मांगना छोड़ देने की ब सुनकर वह परेशान सा हो गया। मुँह के बिस्कुट को अन्दर निगलते हुए बोला—"तो फिर खाऊँगा क्या ?"

"अच्छा अच्छा खाना खाओगे, रोटी खाओगे, फल खाओगे।"

गगू को नये दाता की नई बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसकी आँ टकटकी लगाकर उसने पूछा—"कौन देगा ?"

"देगा कोई नहीं, तुम खुद कमाओगे और खाओगे।"

...ा गई। हँसते हुए वह बोला—"लो, वह भाग गया।"

"भागने दो, फिर आयगा।"

"तो क्या करोगे?"

"इसके हाथ में एक ब्रुश और पॉलिश की डब्बी दूँगा, इसे भीख माँगने से रोकूँगा।"

राकेश भी गम्भीर हो गया। उसने कहा—"मगर वह तो भाग गया और तुम्हारा प्रयत्न भी बेकार हो गया।"

"प्रयत्न बेकार नहीं जायगा, क्योंकि मैं हिम्मत हारने वाला नहीं हूँ। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि तुम्हारे एक हजार प्रयत्न विफल हों, तो भी निराश मत होओ, एक प्रयत्न और करो, निश्चय ही सफलता मिलेगी। खैर! तुमने तो मेरा साथ देने का वायदा किया है न। एक सत्‌ संकल्प और शुभ उद्देश्य के लिये हम लोग अपनी शक्ति का संचय करेंगे तथा उस शक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगा कर अपने राष्ट्र और समाज की स्थिति मजबूत बनायेंगे।"

गोविन्द ने विश्वास व दृढ़ता के स्वर में कहा—"एक से दो हुए हैं, तो दो से सौ भी हो ही जायेंगे।"

गोविन्द के आत्म-विश्वास को देखकर राकेश में भी चेतना का संचार हुआ। वह बोला—"तुम्हारा यही उत्साह रहा तो सौ क्या हजार हो जायेंगे। हम बालकों की शक्ति में जो चमत्कार उत्पन्न होगा, उसे तो दुनिया भी नमस्कार करेगी।"

"अवश्य करेगी।"

दोनों वापिस घर की ओर लौट पड़े। शाम हो चली थी। राकेश ने कहा—"मैं सोचता था आज स्कूल से लौटते हुए तुम्हारे घर चलूँगा और कुछ पुस्तकें देखूँगा, मगर अब तो देर हो गई है, फिर किसी दिन आऊँगा।"

"फिर किसी दिन क्या, कल और परसों होली की छुट्टी है। कल आओ। बहुत दिनों से तुम मेरे घर नहीं आये हो।"

"अच्छा तो, कल जरूर आऊँगा।"

दोनों ने विदा ली और अपने अपने घर की तरफ मुड़ चले। ०००

"कहीं नहीं।"

"कहाँ सोता है ?"

"कभी नाले पर, कभी फुटपाथ पर, कभी स्टेशन पर।"

"माँ-बाप कहाँ हैं ?"

"नहीं हैं, मर गये।"

सुनकर गोविन्द के मन को धक्का सा लगा। वह एक दु
ठहर गया। वहाँ से कुछ बिस्कुट खरीदे और गगू के हाथ पर
बहुत खुश हुआ और बिस्कुट खाने लगा। बिस्कुट खाते खाते
तो गोविन्द ने कहा—"बस, और कुछ नहीं ?"

गगू ने सिर हिलाकर कुछ और खाने की स्वीकृति दी।

पास ही एक ठेले से चार केले खरीदकर गोविन्द ने उसके
दिये। इस बार तो वह खुशी से उछल ही पड़ा। गोविन्द ने
"हमारी एक बात मानो, तुम्हें रोज ऐसी ही अच्छी अच्छी
मिलेंगी।"

"मानूँगा" बिस्कुट भरे मुँह से गगू बोला।

"तो आज से भीख मांगना छोड़ दो।"

गंगू का मुँह चलते चलते रुक गया। भीख मांगना छोड़
सुनकर वह परेशान सा हो गया। मुँह के बिस्कुट को अन्दर ति
बोला—"तो फिर खाऊँगा क्या ?"

"अच्छा अच्छा खाना खाओगे, रोटी अ...

गगू को नये दाता की नई
टकीटकी लगाकर उसने पूछा—"

आ गई। हँसते हुए वह बोला—"लो, वह भाग गया।"

"भागने दो, फिर आयगा।"

"तो क्या करोगे?"

"इसके हाथ मे एक ब्रुश और पॉलिश की डब्बी दूंगा, इसे भीख माँग से रोकूंगा।"

राकेश भी गम्भीर हो गया। उसने कहा—"मगर वह तो भाग गय और तुम्हारा प्रयत्न भी बेकार हो गया।"

"प्रयत्न बेकार नहीं जायगा, क्योंकि मैं हिम्मत हारने वाला नहीं हूँ। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि तुम्हारे एक हजार प्रयत्न विफल हो, तो भी निराश मत होओ; एक प्रयत्न और करो, निश्चय ही सफलता मिलेगी। खैर' तुमने तो मेरा साथ देने का वायदा किया है न। एक सत संकल्प और शुभ उद्देश्य के लिये हम लोग अपनी शक्ति का सचय करेंगे तथा उस शक्ति को रच नात्मक कार्यों मे लगा कर अपने राष्ट्र और समाज की स्थिति मजबूत बनायेंगे।'

गोविन्द ने विश्वास व दृढता के स्वर मे कहा—"एक से दो हुए हैं, तो दो से सौ भी हो ही जायेंगे।"

गोविन्द के आत्म-विश्वास को देखकर राकेश मे भी चेतना का सचार हुआ। वह बोला—"तुम्हारा यही उत्साह रहा तो सौ क्या हजार हो जायेंगे। हम बालको की शक्ति से जो चमत्कार उत्पन्न होगा, उसे तो दुनिया भी नमस्कार करेगी।"

"अवश्य करेगी।"

दोनो वापिस घर की ओर लौट पड़े। शाम हो चली थी। राकेश ने कहा—"मैं सोचता था आज स्कूल से लौटते हुए तुम्हारे घर चलूंगा और कुछ पुस्तकें देखूंगा, मगर अब तो देर हो गई है, फिर किसी दिन आऊँगा।"

"फिर किसी दिन क्या, कल और परसो दोनों की छुट्टी है। कल आओ। बहुत दिनों से तुम मेरे घर नहीं आये हो।"

"अच्छा तो, कल जरूर आऊँगा।"

दोनों ने विदा ली और अपने अपने घर की तरफ मुड़ गये। ●●●

४

बिंध गया सो मोती, रह गया सो सीप

श्यामू को दुकान पर अकेला देखकर उसका दोस्त जग्गू वहीं चला आया। जग्गू कुछ लँगड़ा कर चल रहा था। उसे लँगड़ाता देखकर श्यामू बोला—"क्या हो गया?"

"चोट लग गई।"

"कैसे?"

"मेरे पाँव पर एक आदमी का पाँव आ गया।"

"वह अन्धा था क्या, पकड़ा नहीं उसको?"

"वह मौका पकड़ने-धकड़ने और लड़ने झगड़ने का नहीं था।"

"ऐसी क्या बात थी?"

"बात यह थी कि कल रात मैं सिनेमा देखने गया था। पिक्चर खत्म हुई तो राष्ट्रीय गीत के समय मैं सीधा खड़ा हो गया। मेरे आस पास और भी बहुत से लोग खड़े थे, मगर एक अपटुडेट बाबू जल्दी से बाहर जाने के लिए मेरे आगे से निकला। जगह कम थी, इसलिये उसके भारी से जूते के नीचे मेरा पाँव आ गया।"

"तो तुमने उससे बचकर चलने के लिए क्यों नहीं कहा।"

"अवकाश ही नहीं उतना था।"

"क्यों?"

"राष्ट्रीय गीत चल रहा था।"

"तो ?"

श्यामू के प्रश्न पर जग्गू झुँझला उठा और बोला—"तो करता है, जब राष्ट्रीय गीत गाया जा रहा हो, तो बोलना और ब तो दूर की बात, हिलना डुलना भी नहीं चाहिये। बस, एक दम रहना चाहिये।,,

',अभी तक तेरी बात मेरी समझ में नहीं आयी।" अनजा उसके मुँह की तरफ देखकर श्यामू ने कहा।

जग्गू फिर झुंझला कर बोला—"क्या बात समझ में न बोल?"

"तू कहता है कि राष्ट्रीय गीत गाये जाने के समय चुपचाप खड़े रहना चाहिये। तू यह भी कहता है कि एक अपटुडेट बाबू ते तेरा पाँव कुचलकर चला गया। तो वह अपटुडेट बाबू सीधा औ खड़ा क्यों नहीं रहा ?

श्यामू के तर्क का जग्गू को एकाएक कोई जवाब नहीं सूझा देने की उधेड़बुन में वह उलझ गया। उसे चुप देखकर श्यामू फि लगा—"यह बात समझ में नहीं आती कि तेरे जैसा अनपढ़ औ लड़का तो राष्ट्रीय गीत की इज्जत देने की बात समझता है, अपटुडेट बाबू जो पढ़ा लिखा भी होगा ही, इस बात को नहीं समझा

श्यामू की इस दलील और वहम का जग्गू के पास कोई था। श्यामू को हँसी आ गई उसे हँसता देखकर जग्गू ने पूछा- क्यों है ?"

"तेरी बातें सुनकर हँसी आ गई। तू ऐसे तो सभी से लड़त है, अपनी माँ को भी तंग करता है और बातें करता है राष्ट्रीय गीत

श्यामू की इस बात पर जग्गू तनिक उत्तेजित होकर बोल श्यामू, मैं चाहे लाख बुरा हूँ, मगर जहाँ राष्ट्र, राष्ट्र के झंडे औ गीत का सवाल आकर खड़ा होगा, वहाँ मैं जान की बाजी भी ल हूँ। लड़ता-झगड़ता हूँ, माँ को तंग करता हूँ, इसका यह मतलब

मुझे राष्ट्रीय सम्मान का ध्यान नहीं।"

पडौस की पान की दुकान से एक ग्राहक वहाँ आया। उसने जग्गू बात सुन ली थी। वह जग्गू से बोला—"उस्ताद, तुम तो बहुत गुणी मा होते हो। राष्ट्रीय-सम्मान का ध्यान है तो तनिक ध्यान अपना और अपनी का भी करो।"

अधेड उम्र के इस सुटेड-बुटेड बाबू की बात सुनकर जग्गू शरमा गय बाबू ने फलों पर एक नजर दौड़ाई, फिर श्यामू से पूछा—"चीकू मीठे हैं ?

"जी हाँ, खाकर देखिये, एकदम मिश्री ! शक्कर से टक्कर है।"

बाबू मुस्कराकर कहने लगा—"चीकू से ज्यादा मीठी तो तेरी बातें तू खुद ही शक्कर है, तेरे से टक्कर हम कैसे लेंगे। ला, दो दर्जन चीकू छांट दे

दो दर्जन चीकू कागज की थैली में डालकर उसने पूछा—"और क्या बाबूजी ?"

"दो दर्जन केले दे दे।"

श्यामू ने एक दूसरी थैली मे दो दर्जन केले रख दिये।

"दो दर्जन सतरे भी दे दे।"

श्यामू ने सतरे भी थैली मे गिन दिये और तीनों थैलियाँ बाबूजी पकड़ा दी।

"कुल पैसे कितने हो गये ?" बाबू ने पूछा

श्यामू मुँह ही मुँह बुदबुदाकर बोला—"पाँच रुपये हुए बाबूजी।'

बाबूजी ने जेब मे पाँच का नोट निकाल कर श्यामू को पकड़ा दि फिर फलों की थैलियाँ सामने खड़ी कार के पीछे की सीट पर रखकर, स्टार्ट करके चल दिये।

उनके जाने के बाद श्यामू मुँह मे बुदबुदाते हुए बोला—"गड़बा गया।"

"क्या हुआ ?"

"मैंने बापू से कम पैसे लिये।"

"फिर से हिसाब लगाकर देख।"

श्यामू ने मन ही मन हिसाब लगाया, फिर बोला—"आठ आने का टपका लग गया।"

"तो तूने हिसाब बराबर क्यों नहीं किया?"

"जितना आता था, उतना तो किया। अब गलती हो गयी तो क्या करूँ।"

"पर ध्यान से हिसाब क्यों नहीं करता?"

"जग्गू, तू कैसी बातें करता है। मैं क्या पढ़ा लिखा हूँ? मुझे हिसाब-किताब आता है क्या? मेरे बाप ने क्या मुझे स्कूल में पढ़ने के लिये भेजा था? रुपये आठ आने की भूल चूक तो रोज होती ही है।"

"इस भूल चूक की बात बापू को मालूम है?" जग्गू ने पूछा

"बापू तो खुद रुपये दो रुपये की भूल रोज करते हैं।"

"फिर तो रोज बहुत नुकसान होता है।"

"क्या करें, हिसाब बराबर नहीं आता, तो होता ही है।"

"श्यामू, गलती हो गई, हम लोग पढ़े नहीं। बचपन में अपन मार गुल्ली-डण्डा खेलने वाला वह गोपाल इस साल कोई बड़ा इम्तिहान दे रहा है।"

"वही होता है। जिस गया सो खोजी, वह गया सो तीर।"

श्यामू की बात का मतलब जग्गू नहीं समझा। वह पूछ बैठा—"तेरी इस बात का मतलब क्या हुआ?"

श्यामू ने मतलब समझाते हुए कहा—"मतलब यह हुआ कि जो पु पर जिन गये, वे आगे बढ़ गये। दुनिया उन्हें जानती और मानती है। जो न बैठे रह गये, उन्हें कोई पूछता भी नहीं। गोपाल जिस कर खोजी बन और हम अनपढ़ रहकर कीच के कीच ही रहे।"

जग्गू को अपने पुरखों और परिवार की याद आ गई। वह बोला—

"भई, हमारे परिवार में तो सब पढ़े लिखे ही थे। मेरे दादा तो एक गाँव में मास्टर थे। मेरे ताऊ जी भी दसवीं तक पढ़े थे। मेरे एक चाचा ने तो चौदह किताबें पढ़ डाली थीं। मेरे ताऊजी का लड़का भी——"

जग्गू की बातों से तंग आकर श्याम ने कहा—"बस कर बस ! घी खाया बाप ने सूंघो मेरे हाथ !"

"क्या क्या बोलता है तू ! क्या मतलब हुआ इसका ?"

"बाप घी खायेगा तो क्या बेटे के हाथ में से उसकी खुशबू आयेगी ?"

"कभी नहीं आयेगी।"

"तो तेरे दादा, ताऊ और चाचा की विद्या तुझे आयेगी ?"

"नहीं तो।"

"फिर उस बात पर गर्व करने का क्या फायदा।"

श्यामू की बात खत्म ही हुई थी कि ग्यारह-बारह वर्ष का एक लड़का वहाँ आया और उसने दो केले माँगे। श्यामू ने लड़के-ग्राहक की ओर देखा फिर केलों में से दो सड़े गले केले निकाल कर उसे दे दिये। उसने भी दस पैसे दिये और चलने लगा। वह अभी दो ही कदम चला था कि श्यामू चीख पड़ा—"ऐ सुन !"

लड़का मुड़ा, लौटा फिर पूछने लगा—"क्या है ?"

"इसी उम्र में ठगी करना सीख गया क्या ? दिन के उजाले में ही मुझे बुद्धू बनाता है। यह सिक्का खोटा है, सम्भाल इसे और दूसरा निकाल।" श्यामू ने सिक्का आगे करते हुए कहा।

"ले तेरे केले ! मुझे ठग कहता है, तू यहाँ बैठकर ठगी नहीं कर रहा है क्या ? सड़े हुए केले मुझे पकड़ा दिये। ला, मेरे दस पैसे।" लड़के ने भी ईंट का जवाब पत्थर से देते हुए कहा।

लड़के की तेजमिजाजी जग्गू को अच्छी नहीं लगी। वह बोला—"ऐ अकड़ता क्यों है; सीधे सीधे बात कर !"

"तू बीच में बोलने वाला कौन होता

है, तू काम कर अपना।"

यह सुनकर जग्गू उसकी ओर बढ़ते हुए बोला—"ज्यादा बात करेगा तो दाँत तोड़ दूँगा।"

"अरे जा रे! बहुत देखे तेरे जैसे दाँत तोड़ने वाले! अब तक कितनो के दाँत तोड़े हैं। जेब से एक-दो दाँत निकाल कर तो बता। वाहरे दाँत तोड़ने वाले! जरा हाथ लगाकर तो देख!"

लड़के की ललकार सुनकर जग्गू कुछ सहम गया। उसे पता नहीं था कि लड़का इतना मुँहफट और तेज निकलेगा। जग्गू की घबराहट देखकर श्यामू ने स्थिति सम्भालते हुए उस लड़के से कहा—"एक तो खोटे पैसे दिये, अब ऊपर से लड़ने को भी तैयार है।"

"तुझे खोटे पैसे देने की बात मैं घर से सोचकर तो नहीं आया था तूने चुनकर मुझे सड़े हुए केले दिये, तो मैंने भी चुनकर खोटा सिक्का दिया जैसे को तैसा।"

श्यामू शर्मिन्दा सा होकर बोला—"ला केले वापिस दे और दूसरे अच्छे केले छाँट ले अपने हाथ से।"

लड़के ने सड़े हुए दोनो केले रख दिये और केलों में से छाँटकर दो केले उठा लिये। श्यामू ने उसका खोटा सिक्का वापिस कर दिया। लड़के ने भी मुट्ठी में रक्खे कई सिक्कों को आगे करते हुए कहा—"तू भी छाँट ले अपने हाथ से अच्छा सा सिक्का।"

श्यामू लड़के के इस व्यवहार पर मुस्करा दिया। उसने सिक्कों में से दस पैसे उठा लिये। जग्गू भी मुस्कराने लगा। वह बोला—"इतने अच्छे लड़के होकर, तुम इतनी जल्दी नाराज कैसे हो गये?"

"तुम अच्छे हो, तो सभी अच्छे हैं। कड़वी बात बोलोगे, तो कौन सुनेगा। यह तो कुँए की आवाज है जैसा बोलोगे, वैसी ही वापिस आयेगी।"

छोटे बालक के मुँह से सारभरी बातें सुनकर दोनों हैरान होकर उसका मुँह देखने लगे। श्यामू उससे पूछ बैठा—"लगता है स्कूल मे पढ़ने जाते हो?

"हाँ पढ़े बिना जीवन आगे कैसे बढ़ेगा।"

"तो पढ़ने वालों को क्या तुम्हारी जितनी समझ आ जाती है ? जग्गू ने पूछा।

"वह मुझे नहीं मालूम, पर पढ़ने लिखने से बात को सही ढंग से सोचना और समझना आ जाता है, बात को अच्छे ढंग से कहना और काम करना भी आ जाता है।"

"तो हमें भी कुछ पढ़ाओ।" जग्गू ने कहा।

लड़के ने कहा—"पढ़ने के लिये तो स्कूल में ही जाना पड़ेगा। पर सीखने लायक पहली बात यह है कि भले ही कम बोलो, पर मीठा बोलो। लो, केला खाओ।"

उसने एक केला जग्गू की ओर बढ़ाया।

"नहीं भई, तुम खाओ।" जग्गू ने तनिक शरमाते हुए कहा।

"मैं तो खाऊँगा ही, तुम भी खाओ। शरमाते क्यों हो ? कड़वी बात मुँह से बाहर निकाल दी, तब तो शरमाये नहीं, अब मीठी चीज मुँह के अन्दर ले जाने में शर्मा रहे हो ? लोग तो मीठा मीठा गप्प और कड़ुवा कड़ुवा थू कर देते हैं, पर तुम तो उल्टा ही काम करते हो। लो खाओ।"

अधिक आग्रह करने पर जग्गू ने केला ले लिया। लड़का भी अपनी राह चला गया। केला खाते हुए वह श्यामू से बोला—"ये पढ़ने-लिखने वालों की बातें हैं! क्या दिल! क्या समझ और क्या जबान पाई है मेरे प्यारे ने! यारों के लिये यार है और दुश्मन के लिये तलवार है। पर एक बात बता, तूने उसे सड़े हुए केले क्यों दिये थे ?"

"ये सड़े हुए केले भी तो बेचने ही हैं। इसे छोटा लड़का समझकर देने लगा, पर वह तो उल्टे गले ही पड़ गया।"

"गलत काम किया तभी तो गले पड़ा। सड़ा हुआ माल तो बाहर फेंकना चाहिये।"

"अच्छा ! तो यह बात है ! हिसाब किताब नहीं आता ! गलतियाँ खुद करते हो। फिर हरजाना लोगों के माथे सड़ा माल मढकर वसूल करोगे। यह कौनसी बात हुई?"

"तो फिर क्या करें।"

"कुछ भी करो, मगर किसी को ठगो मत ! तुमने खुद देख लिया कि दूसरों के साथ चालाकी करते हुए खुद ही धोखा खाना पडता है।"

बात खत्म करते ही जग्गू की नज़र दूर से आते हुए छज्जूराम पर पड़ी। वह श्यामू से बोला—"अच्छा, मैं चलता हूँ, काका आ रहा है।"

जग्गू चला गया, लेकिन छज्जूराम के पहुँचने से पहिले वह बाबू जो पाँच रुपये के फल ले गया था, दुकान पर आ पहुँचा और श्यामू से पूछने लगा—"तुमने कितने पैसे लिये मुझ से?"

प्रश्न के पूरे होने तक छज्जूराम भी पहुँच गया। श्यामू ने शरमाते हुए उस बाबू से कहा—"पाँच रुपये लिये बाबूजी आठ आने मैं भूल गया।"

"तुम भूल गये, पर मुझे तो रास्ते में याद आ गया। लो अपनी अठन्नी।" कहते हुए बाबू ने अठन्नी श्यामू की तरफ बढा दी।

छज्जूराम अब सारी स्थिति समझ गया। बाबू भी उसे फल झाडते देखकर समझ गये कि दुकान का असली मालिक यही है और यह लड़का उसका बेटा है।

छज्जूराम आभार के स्वर में बोला—"आपकी बहुत बहुत मेहरबानी बाबूजी ! अठन्नी देने के लिये कौन अपना कीमती वक्त और पेट्रोल जलाकर वापिस आता है।"

"इसमें मेहरबानी की क्या बात है। मैंने तो एक तरह से अपने आप पर ही मेहरबानी की है।"

छज्जूराम विनम्र स्वर में बोला—"इतनी बात तो मैं नहीं जानता, पर यह जरूर जानता हूँ कि ऐसा विचार आप जैसे भलेमानस ही करते हैं। यों अठन्नी से न मैं गरीब हो जाता, न आप अमीर हो जाते।"

"तुम चाहे गरीब न होते, पर मैं गरीब जरूर हो जाता। तुम्हारे आठ आने मेरे शरीर से फूटकर निकलते। कहीं बीमार पड़ जाता तो आठ रुपये डॉक्टर को देने पड़ते। मैं क्यों अपने साथ दुश्मनी करूँ। जिसकी चीज है, उसी के पास रहे।"

इतना कहकर बाबूजी चले गये। अब छज्जूराम ने श्यामू की ओर रोषपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—"कितनी बार कहा है कि जरा ध्यान रखकर काम किया कर, पर पता नहीं, तेरा ध्यान कहाँ रहता है। यह तो भला आदमी था, और कोई होता तो लग गई थी चपत आठ आने की।"

पिता की बात सुनकर श्यामू को अपने अनपढ़ होने का दुख हुआ। अपनी अयोग्यता की पीड़ा उसकी आँखों में आँसू बनकर उमड़ आई। अवरुद्ध गले से उसने कहा—"बापू, मैं जानकर तो गलती नहीं करता, अनजाने में हो जाती है। हिसाब नहीं आता तो क्या करूँ? तुम थोड़ा सा पढ़ा लिखा देते तो क्यों होती यह भूल चूक!"

छज्जूराम ने बेटे का करुण-स्वर सुना और उसकी दयनीय स्थिति देखी तो खुद भी दुखी होकर बोला—"हाँ बेटा, गलती मेरी ही थी, मैंने तुझे पढ़ाया नहीं। पर, तू घबरा मत। अपना गोविन्द भैया कहता था कि तू अब भी पढ़ सकता है। अब मैं तुझको पढ़ाऊँगा। आ, खाना खा ले।"

पिता के स्नेह भरे शब्द सुनकर तथा पढ़ाई का आश्वासन पाकर श्यामू फिर से खिल उठा। वह वहाँ से उठा और खाना खाने का आयोजन करने लगा। उधर छज्जूराम भी बच्चों की पढ़ाई के बारे में सोचने लगा।

○○○

"नहीं क्यों पीयेगा, नखरे करने लगा है क्या ! आ, चल ।" कहकर गोविन्द राकेश को खींचता हुआ पास के कमरे में ले गया ।

गोविन्द के कमरे में पहुँचकर राकेश विस्फरित नेत्रों से चारों ओर देखने लगा । कमरा पहिले की अपेक्षा अधिक स्वच्छ व सजा हुआ था । भगवान राम, श्री कृष्ण, महात्मा बुद्ध, महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, स्वामी विवेकानन्द, लाल बहादुर शास्त्री तथा जॉन केनेडी आदि अनेक महापुरुषों के चित्र भी लगे हुए थे । हिन्दी व संस्कृत में कुछ सूक्तियाँ भी सुन्दर लिखावट में मोटे कागज़ पर लिखकर चिपकाई गयी थी ।

यह सब देखकर राकेश ने पूछा—"क्या बात है गोविन्द, तस्वीरों का शौक कब से शुरू हुआ ? तुम तो सादा जीवन उच्च विचार का नारा लगाया करते थे ।

"तस्वीरों के लगाने से सादगी खत्म हो जाती है क्या ?" देखो तो, ये तस्वीरें हैं क भी । उन्हीं लोगों की तस्वीरें लगाई हैं, जिनका जीवन सादा और विचार उच्च थे ।"

राकेश मेज के पास रक्खी एक कुर्सी पर बैठते हुए बोला—"वह सब तो ठीक है, लेकिन तुमने कमरे को खूब सजाया है ।"

"तस्वीरों के लगाने में मेरा ध्येय सजावट का नहीं, बल्कि अध्ययन और भक्ति का है ।"

गोविन्द की बात सुनकर राकेश को हँसी आ गई ।

"तुम हँसे क्यों ?"

"मैंने उस दिन भी कहा था कि कभी कभी तुम्हारी बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें सुनकर हँसे बिना नहीं रहा जा सकता ।"

"अच्छा तो तुम हँस चुकोगे, तब तुमसे कुछ कहूँगा ।"

राकेश फिर हँस पड़ा और बोला—"ऐसे तो हँसी नहीं आती, कोई बात होती है, तभी हँसा जाता है । अच्छा, अब तुम कहो, क्या कह रहे थे ?"

गोविन्द भी एक कुर्सी पर बैठ गया और उंगली से सामने दीवार की तरफ इशारा करते हुए बोला—"वह देखो किसका चित्र है ?"

"भगवान राम का।"

"मैंने यह चित्र कमरे सजावट करने के उद्देश्य से नहीं लगाया।"

"तो फिर?"

राकेश की जिज्ञासा का समाधान करते हुए गोविन्द ने कहा—"लो
ग तो प्राय इन तस्वीरों को कमरा सजाने के लिये ही लगाते है, लेकि
मैंने तो प्रेरणा लेने के लिये ये तस्वीरें लगाई हैं। मैं रोज सुबह उठकर औ
रात को सोने से पहले इन महापुरुषों से बातें करता हूँ।"

"क्या! राकेश इतने जोर से चौंका कि लगभग कुर्सी से उछल ही गया

"चौंको मत, मैं ठीक कह रहा हूँ। सुबह उठकर मैं भगवान राम
कहता हूँ कि जिस प्रकार आप अपने माता-पिता और गुरुजनों की आ
मानते थे, ठीक वही सामर्थ्य मुझे भी दो, मैं भी सदा माता-पिता और गुरुजन
के सामने हाथ बांधे और सिर झुकाये खड़ा रहूँ।"

गोविन्द की बात राकेश के मन की गहराई को छू गई। उसका चेह
गम्भीर हो गया।

गोविन्द ने आगे कहा—"मैं भगवान कृष्ण से कहता हूँ कि जि
प्रकार आपने अन्याय का सामना करके धर्म की रक्षा की और लोक-कल्या
किया, ठीक उसी प्रकार मैं भी अपना जीवन लोक-कल्याण के लिये अप
कर दूं। महात्मा बुद्ध के सामने खड़े होकर मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझ
भी अपना सुख देकर दूसरों का दुख लेने की चेतना जागृत हो।"

राकेश मन्त्रमुग्ध होकर गोविन्द की बात सुनता जा रहा था—"औ
यह कहता जा रहा था वह इनसे गांधी जी, जिनके मुस्कराते हु
चेहरे पर सत्य, प्रेम, शान्ति और अहिंसा की रेखाएँ खींची हुई है
इनसे मैं यही प्रेरणा लेता हूँ कि मैं भी अपने सभी भाईयों के सा
सत्य, प्रेम, शान्ति और अहिंसा का व्यवहार करूँ। स्वामी विवे
नन्द के इस ओजस्वी और तेजपूर्ण मुख को देखकर मेरे मन
निश्चय होता है कि मैं सदा आगे बढ़ने और दूसरों को आगे बढ़ाने का का
ही करता हूँ। पंडित नेहरू का मुस्कराता हुआ चित्र जब मेरी आंखों के साम
आता है, तो ऐसा लगता है कि वे मुझे संदेश दे रहे हैं और कह रहे हैं

शराफत, इंसानियत, भाईचारे और प्रेम से बढ़कर दुनियाँ में और कुछ नहीं। शास्त्री जी और राष्ट्रपति केनेडी के मुस्कराते हुए चेहरों को देखकर मैं सीखता हूँ कि अपने आदर्श व सिद्धान्तों की रक्षा हेतु हर कठिनाई का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिये।"

गोविन्द चुप हो गया। उसने राकेश की ओर देखा। लगता था कि वह किसी जादू के प्रभाव से मोहित किसी अन्य लोक में ही खो गया है। कुछ क्षण ऐसे ही बीत गये। राकेश जैसे सोते से जागा, फिर सम्भलकर बोला—"चुप क्यों हो गये गोविन्द, आगे कहो।"

"और क्या कहूँ! तुम्हारी हँसी का जवाब देना था, सो दे दिया।"

राकेश ने गिड़गिड़ाकर कहा—"गोविन्द मुझे क्षमा करो।"

"किस कसूर के लिये?"

"मैंने तुम्हारी हँसी उड़ाई। मैं सदा ही तुम्हारी बातों पर हँस देता हूँ, पर बाद में मालूम होता है कि तुम्हारी बातें ठीक हैं। मैं वायदा करता हूँ कि अब कभी नहीं हँसूँगा।"

"पर मैंने तुम्हारे हँसने का बुरा नहीं माना।"

"तुम महान हो, कभी बुरा नहीं मानोगे, पर मैं हमेशा ही गलती कर बैठता हूँ। जिस प्रकार इन महापुरुषों का आदर्श तुमने अपने सामने रखा है, उसी तरह मैं भी तुम्हारा आदर्श अपने सामने रखूँगा। अच्छा, बताओ तो, यह क्या लिखा है?"

राकेश ने दीवार पर टँगे एक मोटे कागज पर लिखी संस्कृत की एक सूक्ति की ओर इशारा करके पूछा।

गोविन्द ने उधर देखा। सुन्दर अक्षरों में लिखी संस्कृत की एक सूक्ति थी। वह धीरे स्वर में पढ़ने लगा—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

समझ में कुछ नहीं आया। वह पूछ बैठा—"क्या मतलब

"इसका मतलब हुआ कि हे भगवान, सब सुखी हों, सब नीरोग हो, कल्याण हो, दुख का अंश किसी को भी प्राप्त न हो।"

अर्थ सुनकर राकेश आत्म विभोर हो गया। एक अद्‌भुत आनन्द से आँखें झूम उठी। वह बोला—"विश्व-कल्याण की कितनी ऊँची कामना कर आनन्द आ गया।

फिर उसने एक और सूक्ति की ओर इशारा करके पूछा—"वह क्या ?"

"वह लिखा है—असतो मा सद्‌गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय

"आह! क्या बात है!! एक बार फिर बोलो।"

गोविन्द ने फिर उसी मीठे स्वर में सूक्ति को गाकर सुनाया। सुनकर कहा—"अर्थ तो मैं समझता नहीं, लेकिन सोचता हूँ कि जब शब्दों र इतना आनन्द आता है, तो अर्थ के आनन्द का क्या कहना! अच्छा न अर्थ तो बताओ।"

गोविन्द ने अर्थ स्पष्ट किया—"कहता है कि हे भगवान! मुझे अन्ध-रोशनी की तरफ ले चलो, असत्य से सत्य की ओर ले चलो तथा अमरता की ओर ले चलो।"

राकेश को जैसे अन्धकार में प्रकाश मिल गया। वह कहने लगा—आज मेरा यहाँ आना सफल हुआ। इतना आनन्द तो मुझे चाट-कर, सैलसपाटा कर या घूम फिरकर भी कभी नहीं आया, जितना आज तें सुनकर आया है। पर तुम्हें तो संस्कृत नहीं आती, फिर ये कैसे——?"

गोविन्द बीच में ही बोल पड़ा—"संस्कृत मुझे पिताजी ने सिखायी है।"

"अच्छा! चाचाजी को संस्कृत आती है?" विस्मय से राकेश ने पूछा।

"हाँ, बहुत अच्छी आती है। उन्होंने अपने कई पोस्टमैन मित्रों को भी सिखाई है।"

"तो चाचाजी सिर्फ चिट्ठियाँ ही नहीं बाँटते, विद्या भी बाँटते हैं।"

"लो, बातें बाद में करना पहिले लस्सी पी लो।" कहते हुए गोविन्द की माँ दो गिलास लस्सी लेकर कमरे में आई।

लस्सी के गिलास उन्होंने मेज पर रख दिये। गोविन्द ने उठकर लस्सी का गिलास उठाया और राकेश की ओर बढ़ाकर बोला—

—"बहुत बातें हो गई, दिमाग गरम हो गया होगा। लो, लस्सी का घूंट भरो।"

राकेश ने गिलास थाम लिया। माँ वापिस रसोई में चली गई। गोविन्द ने भी गिलास उठा लिया और लस्सी पीने लगा।

दोनों ने गिलास मेज पर रक्खे ही थे कि बाहर गली से कुछ शोरगुल सुनाई दिया। खिड़की से झाँकने पर मालूम हुआ कि कुछ झगड़ा हो रहा है। एक बालक ने एक सज्जन के साफ सुथरे कपड़ों पर रंगीन पानी डाल दिया था। सज्जन ने भी बालक के गाल पर दो-तीन थप्पड़ लगा दिये थे। बालक रोने लगा था, उसके रोने की आवाज सुनकर उसका पिता मकान से बाहर आकर सज्जन से उलझ गया था।

सज्जन कह रहे थे—"तुम्हारे बेटे ने मुझ पर रंग क्यों डाला? क्या रिश्ता है मुझ से? क्या पहिचान है? राहगीरों के कपड़े खराब कर दिये जायेंगे क्या?"

बालक के पिता ने कहा—"होली है, बच्चे ने जरा सा रंग डाल ही दिया तो क्या हो गया! क्या आपको बच्चे के बराबर हो जाना चाहिये?"

बालक के पिता की यह दलील सुनकर सज्जन उत्तेजित हो उठे और बोले—"बच्चा है तो आपका है, मेरा नहीं। आप अपने घर के सब कपड़े निकालकर इसके सामने रख दीजिये, फिर इसमें उन पर रंग डलवाईये। और होली आज कहाँ है, होली तो कल है। मुझे जरूरी काम से जाना था, मेरे कपड़ों का सत्यानाश कर दिया और आप कहते हैं कि होली है, बच्चा है। इस तरह तो आप खुद अपने बच्चों को बिगाड़ते हैं।"

राघो काकी भी उधर आ पहुँची। सज्जन के नये और अच्छे कपड़ों पर रंग पड़ा हुआ देखकर बोली—"हाय, हाय ! यह किसने किया ! बड़े तूफानी बच्चे है ! पर बच्चे क्या करें, खुद माँ-बाप ही ऐसे हैं, तो क्या किया जाय इन बच्चो से भगवान बचाये। न छोटो का ख्याल न बडो का कायदा। न दुआ न सलाम ! बस, उधम-मस्ती से काम है। माँ बाप भी तमाशा देखते हैं, कुछ कहते नही।"

पडित जी भी अपने दरवाजे पर खडे थे। राघो काकी को बडबडाते हुए देखकर बोले—"अरी क्यों बडबडा रही है, बच्चों पर ! बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं। जरा सा रग डाल ही दिया तो क्या हुआ !"

राघो काकी ने उधर देखा। सफेद धोती-कुर्ता पहिने, सिर पर तिलक लगाये, पडितजी पान चबा रहे थे। राघो काकी ने पास खडे हुए एक लडके का हाथ पकडा, जिसके हाथ में रगीन पानी की शीशी थी, फिर उसे पडितजी की तरफ ले जाती हुई बोली—"अच्छा पडितजी, इस भगवान का रूप और लीला तनिक आप भी तो देखो।"

पडितजी ने राघो काकी के साथ हाथ मे रग की शीशी लिये हुए लडके को अपनी तरफ बढते देखा तो घबराये और बोले—"वही खडी रह, आगे मत बढ।"

वह बोलीं—"घबराओ नही मैं कुछ नही करूँगी। भगवान का यह रूप तुम्हे अपनी लीला दिखायेगा।"

राघो काकी और लडका पडितजी के समीप पहुँच रहे थे। उन्हे अपनी ओर बढते देखकर वे शीघ्रता से अपने घर के भीतर घुस गये। यह देखकर वहाँ उपस्थित सभी छोटे बडे हँस पडे। बालक के पिता को भी हँसी आ गई। सज्जन से बोले—"अच्छा भाई साहब, माफ कर दीजिये, गलती हो गई। मैं समझता हूँ कि बच्चे ने आप पर रग डाल कर ठीक नही किया।"

अब तो सज्जन का गुस्सा भी ठडा हो गया उनकी वाणी भी नरम हुई और वे बोले—"दुख कपडों के खराब होने का इतना नही श्रीमान् ! दुख तो इस बात का है कि मैं एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से अपने एक मित्र से मिलने

स्टेशन जा रहा था। मित्र की पुत्री बीमार है और उसे आज बाहर ईलाज के लिये ले जाया जा रहा है। मुझे मित्र को एक आवश्यक संदेश देना था, लेकिन अब इन कपड़ों में नहीं जा सकूंगा। घर पहुँच कर कपड़े बदलूंगा, तब तक गाड़ी छूट जायगी।"

यह बात सुनकर बालक के पिता बहुत दुखी हुए। उन्होंने पास में ही खडे बालक का कान पकड़ा और बोले—"सुन रे मूर्ख ! तेरी मूर्खता से इन्हें कितना नुकसान हो गया। अब लगाऊं तेरे मुँह पर थप्पड़ !

राधो काकी बीच में बोल पड़ी—"अरे लाला, उसके कान क्यों उमेठ रहे हो ? वह तो बच्चा है, जैसा देखेगा, वैसा करेगा।"

बालक के पिता ने राधो काकी की बात सुनी-अनसुनी कर दी और सज्जन की ओर मुड़कर बोले—"मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ, भाई साहब, माफ कर दीजिये। लड़के की नादानी से आपका बहुत बड़ा हर्ज हो गया।"

"सो तो हो ही गया, अब क्या किया जा सकता है।" कहकर वे तो अपने रास्ते हो लिये।

धीरे धीरे भीड़ बिखरने लगी। राधो काकी भी बड़बड़ाती हुई अपने घर की तरफ चल दी।

राकेश और गोविन्द खिड़की से हट गये। राकेश सज्जन के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए बोला—"उन महाशय को जरूरी काम से स्टेशन पहुँचना था, मगर अब नहीं पहुँच सकेंगे।"

"हाँ, नागरिक-भावना न होने से ऐसा ही होता है।"

"अच्छा, अब मैं चलूंगा।"

"रात को होली जलाने के समय तो आओगे ?"

"हाँ जरूर आऊँगा।"

राकेश गोविन्द से विदा लेकर अपने घर चला गया।

ooo

६

फेंका फेंकी क्या है ?

रात धरती पर उतर आई और जगह जगह होलिका-दहन का शोरगुल सुनाई देने लगा। गली गली और मोहल्लों में छोटे-बड़े बच्चे इकट्ठे होकर जलती हुई अग्नि में अपने घर से लायी हुई कुछ सामग्री डालने लगे।

लोग-बाग अग्नि के पास आकर, हाथ जोड़कर, आँख मूँदकर कुछ प्रार्थना करके धीरे धीरे अपने अपने घर लौटने लगे थे, लेकिन बच्चों की भीड़ अभी तक वहाँ मौजूद थी। बच्चों के बीच गोविन्द और राकेश भी मौजूद थे। एकाएक गोविन्द जलती हुई अग्नि के सामने आँखें मूँदकर, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और मुँह ही मुँह में कुछ कहने लगा। उसको ऐसा करते देख कर, शेष सभी बालक कौतूहलपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे।

अन्त में गोविन्द ने अपना दायाँ हाथ सिर के चारों ओर घुमाकर अग्नि में कुछ फेंका। राकेश ने भी वैसा ही किया।

एक बालक यह सब देखकर आगे बढ़ा और गोविन्द से पूछने लगा—"हमें भी बताओ, तुम यह क्या कर रहे हो ?"

"फेंका-फेंकी कर रहे हैं।" गोविन्द ने उत्तर दिया।

बालकों ने आश्चर्य से फेंका-फेंकी शब्द सुना और गोविन्द को घेरकर खड़े हो गये। एक दूसरा बालक आगे बढ़ आया और पूछने लगा—"यह फेंका-फेंकी क्या होता है ?"

गोविन्द ने समझाया—"बात यह है कि मैं गुड़ बहुत खाता हूँ और

अपनी इस आदत से बहुत तंग हूँ। आज होली जलाई जारही है। प्रह्लाद के साथ बैठकर होलिका भी जल गई थी, इसी तरह मैं भी अपने अवगुणों को इस अग्नि के साथ बैठाकर जला देना चाहता हूँ। इस अग्नि के सामने खड़े होकर जो अपने अवगुण अथवा दोष को स्वीकर करके उसे अग्नि में स्वाहा कर देता है, उसे उस अवगुण से छुट्टी मिल जाती है। मैंने गुड़ ज्यादा खाने के अपने अवगुण को अग्नि में बैठा दिया है, अब वह जल गया।"

"क्या सच ?" एक बालक ने पूछा।

"हाँ एकदम सच !"

"तो राकेश ने किस अवगुण को अग्नि में डाला है ?" एक अन्य लड़के ने पूछा।

इस प्रश्न का उत्तर राकेश ने ही दिया। वह बोला—"मुझ में बचपन से ही एक जबरदस्त अवगुण है। मुझे दूध पीना अच्छा नहीं लगता। मेरी माँ मेरी इस आदत से बहुत तंग है। आज मैंने अग्नि में अपना यह अवगुण स्वाहा कर दिया है। अब मैं माँ को तंग किये बिना चुपचाप दूध पी लिया करूँगा।"

"हम भी ऐसा करें ?" दो बालकों ने एक साथ पूछा।

गोविन्द ने कहा—"हाँ करो, मगर सच्चाई के साथ करना। अवगुणों को मुट्ठी में भरकर सिर में घुमा कर अग्नि में फेंक दो, जल जायेंगे।"

"हम भी करें ?" अन्य दो बालकों ने पूछा।

"हाँ हाँ, जरूर करो।"

"मैं भी करूँ ?" एक नन्हे मुन्ने ने पूछा।

"तुम भी जरूर करो।"

सभी बच्चे फेंकाफेंकी में लग गये। मोहल्ले के कुछ अन्य लड़के भी वहाँ इकट्ठे हो गये। अग्नि में अपना अवगुण फेंकने के बाद सभी शोर मचाने लगे।

"यह कैसी फेंका-फेंकी ?" राकेश ने पूछा।

"हाँ।" एक नन्हे-मुन्ने ने कहा।

"मैंने भी फेंका-फेंकी कर ली।" एक बालक बोला।

"और मैंने भी।" दूसरा बालक कह उठा।

गोविन्द ने उन्हें चुप कराते हुए कहा—"भई, शोर मत मचाओ। अच्छी बात है कि आप लोगों ने अपने अवगुण जला दिये हैं। आओ, अब सामने चबूतरे पर बैठकर कल होली खेलने की योजना बनाते हैं।"

"हाँ हाँ, चलो।" सभी एक स्वर में कह उठे।

सभी चबूतरे पर आकर बैठ गये। गोविन्द, राकेश और दूसरे बड़े लड़के भी वहाँ आकर बैठ गये। गोविन्द ने कहा—"कल होली कैसे खेलेंगे, यह तय करने से पहिले सब अपनी अपनी 'फेंका-फेंकी' की बात बतायेंगे।"

"मैं बताऊँ?" पाँच छः वर्षीय एक बालक ने पूछा।

"हाँ, सब से पहिले तुम्हीं बताओ।"

"मैं स्कूल में, अपने पास बैठने वाले अनिल की जेब से चाकलेट निकाल कर खा जाता हूँ। मैंने कहा कि हे अग्निदेव, मैं अब उसकी चाकलेट नहीं खाऊँगा।"

उसकी बात सुनकर सभी बच्चे जोर से हँस पड़े।

गोविन्द ने हँसते हुए पूछा—"तो अब अनिल की जेब से चाकलेट निकालकर नहीं खाओगे?"

"नहीं खाऊँगा।"

"बहुत अच्छे हो तुम! राजा हो राजा!"

"अब मैं बताऊँ?" हाथ खड़ा करके एक अन्य बालक ने आज्ञा माँगी।

"बताओ।"

"मुझे कक्षा में रोज अपनी मिस से डाँट खानी पड़ती है। मैं उनका दिया हुआ काम करके नहीं ले जाता। मैंने भी अग्निदेव से कहा कि अब मैं

काम करके ले जाया करूँगा। काम नहीं करके ले जाने का मेरा अवगुण जला दो।"

"शाबास ! तुमने आलम का अवगुण अग्नि में फेंककर जला दिया, यह बहुत अच्छा किया। अब मिस डाँटेंगी नही, बल्कि खुश होंगी और प्यार करेंगी। ठीक है न ?"

"हाँ।"

"अबी मैं बताऊँदा।" लगभग पाँच वर्ष की आयु के एक बालक ने तुतलाते हुए कहा।

"अच्छा तुम बताओ।" गोविन्द ने भी तुतलाते हुए कहा।

गोविन्द के तुतलाने पर सभी को हँसी आ गई।

बालक कहने लगा—"वो है ना, मेले दादाजी, जबी वो नीद में छोतें हैं, तो मैं उनती मूँचे पतलतर थींचता हूँ।"

उसका तुतलाना सुनकर थोड़ी थोड़ी हँसी सभी को आ गई, मगर उसकी बात किसी की समझ मे नही आई। गोविन्द भी नहीं समझ सका। उसने पास बैठे हुए उस बालक के बड़े भाई से पूछा—"यह क्या कह रहा है ?"

उसके भाई ने स्पष्ट किया—"कहता है कि मेरे दादाजी जब नीद में सोते हैं, तो मैं उनकी मूँछे पकड़कर खीचता हूँ।"

सभी को बहुत जोर से हँसी आ गई। गोविन्द भी हँसते हँसते बोला—"अले अले, यह तो बोहत बुली बात है।"

बालक ने जवाब दिया—"पल अब नही थींचूँदा।

फिर से सब हँस पड़े।

उसके भाई ने कहा—"कहता है कि अब नही खींचूँगा।"

गोविन्द भी तुतलाते हुए बोला—"हाँ, नहीं थींचना, नही तो दादाजी मालेंगे।"

रमेश शरमाते और झिझकते हुए कहने लगा—"मैं लड़ाई-झगड़ा बहुत करता हूँ। अपने छोटे भाई-बहनों को काट खाता हूँ। पड़ौस में रहने वाले अजेय, अजीत और मधु के हाथ में भी मैंने काट खाया था, पर अब नहीं काटूंगा।"

रमेश की बात सुनकर हँसी रोकने के लिये कई बालकों ने अपने हाथ मुँह पर रख लिये। एक लड़के की हँसी तो रोकते रोकते भी फूट ही पड़ी। रमेश ने उस लड़के की ओर देखा फिर गोविन्द से शिकायत के स्वर में बोला—"वो देखो हँसता है।"

यह सुनकर तो सभी को हँसी फूट पड़ी।

गोविन्द ने मुस्कराते हुए कहा—"भई, यह बात तो हँसने वाली ही थी। तुम समझदार लड़के होकर काटने-फाड़ने का काम क्यों करते हो। विद्यार्थी हो, पढ़ने जाते हो। पुस्तकों में तो यही लिखा है कि अपने भाइयों से प्रेम करो, उनके साथ हिलमिल कर रहो। काटना-फाड़ना तो जानवरों का काम है, हमारा तुम्हारा काम नहीं। खैर ! अब आगे से तो नहीं काटोगे ?"

"बिल्कुल नहीं काटूंगा।"

"अच्छी बात है, पर भूल मत जाना कि तुमने काट खाने की आदत अग्निदेव को चढ़ा दी है।"

"कभी नहीं भूलूंगा।"

कुछ दूर बैठे एक अन्य बालक को सम्बोधित करके गोविन्द ने पूछा—"राजेन्द्र तुम सुनाओ, तुमने क्या फेंका ?"

राजेन्द्र कहने लगा—"मैं अपने से बड़ों का नाम उनके पीछे कुछ बिगाड़कर लेता रहा हूँ, मगर अब ऐसा नहीं करूंगा। सभी के नाम के साथ 'जी' लगाया करूंगा।

"शाबास ! इस बात का हमेशा ध्यान रखना।"

"अवश्य रखूंगा।"

फिर गोविन्द सभी को सम्बोधित करके कहने लगा—"अच्छा, अब

इस बात को तो खत्म करें, अब कोई यह बताये कि हम होली क्यों मनाते है? बोलो, कौन बतायेगा?"

सभी मैं मैं करने लगे।

इस पर गोविन्द ने सभी को शान्त करते हुए धीरे से कहा—"भई, आप लोग चिल्लाओ मत। परीक्षा के दिन समीप है। आस पास कॉलेज के विद्यार्थी पढाई कर रहे होंगे, उनकी पढ़ाई मे हर्ज होता होगा। जिसको कुछ कहना है, वह अपना हाथ खडा कर दे।"

गोविन्द के कहने पर कई लडको ने हाथ खडे कर दिये। शेखर की ओर देखकर वह बोला—"अच्छा, अब शेखर हम सभी को होली मनाने का कारण बतायेगा। सभी ध्यान से सुनें।"

शेखर पहिले तो तनिक सकुचाया फिर कहने लगा—"भगवान ने नर-सिंह अवतार धारण किया और हिरण्यकश्यप को मार डाला तो उसी रात बहुत समय से कारावास मे कैद लोगो को मुक्ति मिली और वे ......"

एक बालक बीच मे ही बोल पडा—"पर लोगो को कारावास मे किसने डाला था और क्यों डाला था?"

शेखर ने समाधान किया—"हिरण्यकश्यप चाहता था कि उसे ही भगवान माना जाय, जो लोग उसे भगवान मानने के लिये तैयार नही थे, उन लोगों को कारावास मे डलवा दिया गया। जिस शाम हिरण्यकश्यप मारा गया, उसी रात को सभी मुक्त हुए। सभी महिनों और वर्षों के बाद अपने माता-पिता, भाई-बहिन, बच्चे व नातेदारों से मिल रहे थे। रात के समय तो खुशी मनाने का अवसर नही था, इसलिये सभी ने अगले दिन एक दूसरे पर गुलाल और अबीर डाला। प्रह्लाद को होलिका के साथ बैठा कर जलाया था इसलिये तो होली जलाई जाती है और अगले दिन सभी लोगों ने मुक्ति पाने की खुशी मे रग डाला, इसलिये होली खेली जाती है।"

अपनी बात कहकर शेखर चुप हो गया।

गोविन्द कहने लगा—"कितनी अच्छी बात बताई है शेखर ने। हम लोग भी आपस में रग इसलिये डालते है कि प्रेम, प्यार और भाईचारा बढ़े,

लेकिन कभी कभी उल्टा काम भी हो जाता है।"

एक लड़के ने शिकायत के स्वर में कहा—"अनिल ने कल सब के मुँह पर लगाने के लिये काला रंग और वार्निस तैयार किया है।"

एक अन्य लड़का भी बीच में बोल पड़ा—"और इस महेश ने भी लाल हरे रंग में तेल मिलाया है।"

गोविन्द ने कहा—"अच्छा दोस्तों, वे सभी लोग अपना अपना हाथ खड़ा करें, जिन्होंने कल के लिये वार्निस, तेल और कोयले की तैयारियाँ की हैं।"

किसी ने भी हाथ खड़ा नहीं किया।

गोविन्द ने फिर कहा—"देखो, मैं तो तुम सभी का साथी और भाई हूँ। यहाँ पर बैठे हुए सभी एक दूसरे के साथी और भाई हैं। हम लोग यहाँ इसीलिये तो इकट्ठे हुए हैं कि अच्छी बातें अपने पास रख लें और बुरी बातें निकाल फेंकें। इसमें हानि नहीं, लाभ ही होगा। कहो, किस किसने कल की तैयारी की है?"

एक हाथ खड़ा हुआ। उसे देखकर एक अन्य लड़के ने भी हाथ खड़ा किया। इस तरह एक दूसरे को देखकर कई लड़कों ने हाथ खड़े कर दिये।

गोविन्द बोला—"अच्छा, अब हाथ नीचे कर लो। अभी अभी शेखर ने बताया कि प्रेम, भाईचारा, स्नेह और आपसदारी को फिर से ताजा करने के लिये ही हम लोग होली खेलते हैं। जब हम मुँह मीठा करना चाहते हैं, तो शक्कर या गुड़ खाते हैं। मिरचें खाने से मुँह मीठा नहीं होता, बल्कि जल जाता है।"

"जीभ में जल जाता है।" और तो और तोतला बोलता हुआ वह तुतलाने वाला बच्चा बीच में ही बोल पड़ा।

उसका तुतलाना सुनकर सभी हँस पड़े।

गोविन्द फिर कहने लगा—"तो प्रेम और भाईचारा बढ़ाने वाले त्योहार के मौके पर गंदी चीजें डालकर झगड़ा फिसाद खड़ा करना तो दुखद ही है जैसे मुँह मीठा करने के लिए मिरचें खाना, इसलिए आप सभी ऐसी गन्दी चीजें फेंक दें जिनसे झगड़ा होने का डर हो।"

सभी चुप रहे।

वह फिर बोला—"मेरी बात आप लोगों को मंजूर नहीं?"

सभी एक दूसरे की ओर देखने लगे और कानाफूसी करने लगे, लेकिन गोविन्द निराश नहीं हुआ। उसके दिमाग में स्वामी विवेकानन्द की वह बात जड़ पकड़ चुकी थी कि यदि तुम एक हजार बार भी असफल हो जाओ, तो एक प्रयत्न और करो, अवश्य सफल हो जाओगे। अतः उसने कहा—"मैं समझता हूं कि जो कुछ मैं सोच रहा हूं और कह रहा हूं, उसमें सबका हित है।"

इतने पर भी सब चुप रहे और आपस में कानाफूसी करते रहे। गोविन्द ने चारों ओर दृष्टि घुमाकर कहा—"माँ जब अपने बच्चे की आँख में काजल डालती है, तो बच्चे को बहुत बुरा लगता है। वह रोता है और समझता है कि यह मुझे प्यार करने वाली माँ नहीं, बल्कि मेरा बुरा सोचने व करने वाली कोई शत्रु है, लेकिन वास्तव में तो ऐसा नहीं होता। आपके भाई के नाते मैं आपका हित सोचता हूं, लेकिन आपने अब तक मुझे अपना भाई नहीं समझा।"

"मैं तो फेंक दूंगा।" एक आवाज आई।

"मैं भी फेंक दूंगा।" दूसरी आवाज भी आई।

"यहां मैं कोई नहीं, हम सब हैं।" गोविन्द ने कहा।

"हम सब फेंक देंगे।" कई आवाजें एक साथ उभर गईं।

गोविन्द ने सन्तोष की सांस ली फिर कहा—"तो आप लोग मुझे अपना समझते हैं। मैं खुश हूं। बस आप लोग कल इतना ध्यान रखना कि जो होली खेलना न चाहे, उन पर रंग न डालना। कई लोग जरूरी काम से जाते हैं, उनके कपड़े यदि खराब कर दिये जायेंगे, तो वे अपना काम कैसे कर सकेंगे। झगड़ा होगा, सो अलग।"

"हां गोविन्द भैया, आज रमेश ने एक बाबू के कपड़े खराब कर दिये थे।" एक बालक ने शिकायत की।

"अब रमेश ऐसा नहीं करेगा। अच्छा, अब हम लोग शान्ति के साथ

७

पहिले दिल मिला, फिर हाथ मिला

चारों तरफ होली का हुल्लड़ मचा हुआ था। छोटे बड़े सभी, हाथों में रंग और गुलाल लिये उन मित्रों पर ढूंढ ढूंढ कर रंग डाल रहे थे, जिनको रंगने के लिये कई दिनों से मन में विचार कर रक्खा था।

नगर के कई मोहल्लों में जहां शिक्षित लोग रहते थे, वहां होली मिलने का एक अत्यन्त ही नया और सुन्दर ढंग अपनाया गया। मोहल्ले के विद्यार्थियों ने होली से कई दिन पहिले ही चन्दा इकट्ठा करना शुरू कर दिया था। चन्दे के उन्हीं पैसों में से ढेर सारे फूल लाये गये। सुबह ही सुबह मोहल्ले की माताओं, बहिनों, भाभियों और बेटियों ने मिलकर उन फूलों के सुन्दर हार बना डाले। चौक में एक अच्छे से स्थान पर बांस का स्टैंड बनाकर उसमें ये हार लटका दिये गये। कुछ बाल्टियां तथा पिचकारियां भी इकट्ठी की गईं। तीन बड़े बड़े टब किनारे पर लाये गये और उनमें हरा, लाल, पीला रंग घोला गया। टब में घोले हुए रंग को बाल्टियों में डालने की व्यवस्था भी थी। प्रत्येक बाल्टी में तीन-तीन चार-चार पिचकारियां पड़ी हुई थीं। जहां हार लटकाये गये थे पास ही वहीं एक तख्त पर चद्दर बिछाकर कुछ थालियां सजाई गई थीं। एक थाली में गुलाल था, दूसरी में कुछ पेड़े और मिठाइयां थीं, तीसरे में कुछ इलायची सुपारी वगैरा रक्खी गई थी।

मोहल्ले-वालों में जो भी जाना पहिचाना या अनजान व्यक्ति निकलता, सब से पहिले उसके गले में फूलों का हार डाला जाता था। हार गले में डलवाने का अर्थ होता था कि वह व्यक्ति होली खेलने के लिये तैयार है। हार डालने के बाद उसके मुंह में पेड़ा रक्खा जाता था। पेड़ा मुंह में रखते

ही उस पर चारों ओर से गुलाल और रग पड़ना शुरू हो जाता था।

कुछ बड़े बूढ़े लोग जो होली खेलने तथा रग डालने मे अपने को असमर्थ समझते थे, वे एक ओर चबूतरे पर बैठे भजन-कीर्तन मे मग्न थे। नमस्ते व प्रणाम करने वाले बच्चों को वे आशीर्वाद के स्वरूप पास रखी थाली मे से थोड़ा सा गुलाल मुँह पर अवश्य लगा देते थे।

इस प्रकार कई अच्छे मोहल्लो मे कुछ समझदार लोगों ने विद्यार्थियो के सहयोग से अत्यन्त ही सुन्दर व सुचारु ढग से एक आदर्श होली खेली।

रात वाले सभी साथियों ने मिलकर, वार्निश, कोयला और तेल मिला हुआ रग, प्रतिज्ञा के अनुसार फेंक दिया था। वहाँ होली खेलने वालो मे से किसी के पास कोई गन्दा रग नही था। गोविन्द, राकेश, शेखर, रमेश आदि कई लड़के अपनी अपनी पिचकारियाँ लिये खड़े थे। जो भी वहाँ आता और होली खेलने के लिये तैयार होता, उसी पर ये लोग चारो ओर से घेर कर पिचकारियाँ छोड़ते और सिर से पाँव तक गुलाबी रग मे भिगो देते।

अपने एक साथी के साथ, हाथ मे पिचकारी लिये अरुण आता दिखाई दिया। अरुण को इधर आता देखकर शेखर के चेहरे पर खुशी और आनन्द के जो भाव थे, वे गायब हो गये और घृणा, क्रोध व प्रतिहिंसा के भाव उभर आये। उसके चेहरे का परिवर्तन गोविन्द की आँख मे छिपा नही रहा। जब अरुण पास आया तो गोविन्द ने शेखर से कहा—"अरुण आ रहा है, पिचकारी भरो।"

"मैं उस पर रग नही डालूंगा।" शेखर ने कहा

"क्यों?"

"मेरी उससे बोलचाल नही है।"

"पर आज तो होली है, रग डालने में क्या हर्ज है।"

"नहीं मैं नही डालूगा, मेरी उसकी दोस्ती खत्म हो गई है।

अरुण भी जान गया कि शेखर उससे होली खेलने के लिये तैयार नहीं है। वह अब तक गोविन्द के समीप आ चुका था। उसने गोविन्द की तरफ

पिचकारी तानकर छोड़ दी। गोविन्द तो शेखर से बातों में लगा हुआ था, लेकिन राकेश और रमेश ने अपनी पिचकारियों से अरुण को रंग डाला। गोविन्द कुछ मॅंभला तो उसने अपनी पिचकारी अरुण के साथी पर छोड़ दी।

फिर अरुण ने जेब से गुलाल निकाला और गोविन्द के मुँह पर लगाया। उसके बाद राकेश और रमेश के मुँह पर भी लगाया। अब मुट्ठी भर कर उसने शेखर की तरफ देखा, उसने नजरें फिरा लीं और पिचकारी भरने के बहाने टब की ओर बढ़ा। इस पर अरुण ने लपक कर उसकी बाँह पकड़ ली और कहा—"ठहरो शेखर, ऐसी भी क्या नाराज़गी है। आज तो होली है।

शेखर ने एक तेज नज़र से अरुण की तरफ देखा और बोला—"जब मैं तुम से बोलता नहीं हूँ, फिर मेरी बाँह क्यों पकड़ी है। छोड़ो मेरी बाँह!"

"नहीं छोड़ूँगा।" अरुण ने हँसते हुए कहा।

"देख अच्छा नहीं होगा।" शेखर ने चेतावनी दी।

"होगा सो देखा जायगा, पर मैं गुलाल लगाये बाँह नहीं छोड़ूँगा।

"गुलाल तू जबरदस्ती लगायगा?"

"नहीं प्रेम से लगाऊँगा।"

विषय के लिये नहीं

"पर मैं तुझ से गुलाल लगवाना नहीं चाहता।"

"पर मैं तो लगाना चाहता हूँ।"

"मैं कहता हूँ, छोड़ दे मेरा हाथ।"

"गुलाल लगवा ले, फिर छोड़ दूँगा।"

ताव खाकर शेखर ने पिचकारी पकड़े हुए हाथ से अरुण के हाथ को जोर से झटक दिया। उसकी बाँह तो अरुण के हाथ से छूट गई, लेकिन पिचकारी का मुँह अरुण की बाँह पर इतने जोर से बैठा कि वहाँ रगड़ पड़ने से खून निकल आया। अरुण ने अपने हाथ से निकलते खून को देखा फिर शेखर से बोला—"तू खुश है, अब तो गुलाल लगा दूँ।"

शेखर कुछ बोला नहीं, उसी तरह तना हुआ और अकड़ा हुआ खड़ा रहा। गोविन्द को शेखर का इस तरह तनना अच्छा नहीं लगा। वह पास आकर

शेखर फिर भी चुप रहा।

इस पर अरुण बोला—"यह मुझसे नाराज रहे, लेकिन मैं इससे नाराज नहीं हूँ। मुझे तो इस बात का दुःख है कि मेरे एक मित्र के सोचने का तरीका कितना गलत है। गलती इसकी होने पर भी अब मैं इसे मना रहा हूँ।"

"हाँ शेखर, ऐसे मित्र तुम्हें ढूँढने से भी नहीं मिलेंगे।" गोविन्द ने कहा।

शेखर के पास कोई जवाब नहीं था। लगता था कि वह मन ही मन में पछता रहा है। गोविन्द उसके मन का भाव ताड़ गया। उसने कहा—"सुबह का भूला अगर शाम को घर आ जाये तो भूला नहीं कहलाता। अगर तुम मानते हो कि अरुण की कोई गलती थी, तो बात खत्म कर देनी चाहिये। देख नहीं रहे हो, अलग अलग भाषा संस्कृति, खान-पान और वेश-भूषा वाले देश भी आपस में गले मिल रहे हैं और ऐसे में हम एक देश, एक नगर, एक मोहल्ले, एक स्कूल और एक कक्षा के विद्यार्थी आपस में रूठकर बैठे रहें, तो क्या अच्छी बात है? आओ, पिछली बातों को भूल जाओ और अरुण से हाथ मिलाओ।"

अरुण आगे बढ़कर बोला—"हाथ मिलाने न मिलाने से क्या फर्क पड़ता है, हमारे दिल तो मिले हुए ही हैं। बस इसका दिल जरा बीमार होकर छुट्टी पर गया हुआ था।"

अरुण की बात सुनकर शेखर की मुस्कराहट फूट पड़ी। उसने आगे बढ़कर उसे गले से लगा लिया। अरुण ने भी गुलाल भरे हाथ से उसका मुँह रंग डाला और पूछा—"अब बोल, गुलाल जबरदस्ती लगाया या नहीं?"

"लगा ले बाबा, लगा ले।" प्रेम-प्रवाह में बहते हुए शेखर ने कहा।

तत्पश्चात सभी मित्रों ने एक दूसरे को गुलाल लगाया और रंग में भिगो दिया।

बहुत देर तक ये मित्र होली खेलते रहे। एकाएक गोविन्द की दृष्टि गली के किनारे पर चुपचाप खड़े श्यामू और जग्गू पर पड़ी। दोनों के हाथ में ...ल था और कपड़े भी रंग में भिगे हुए थे। गोविन्द इनके पास पहुँचा और ...

"क्या बात है श्यामू, यहाँ चुपचाप क्यों खड़े हो?"

श्यामू तनिक सकुचाते हुए बोला—"हम दोनों आप लोगों के साथ

होली खेलने आये थे पर— —।"

श्यामू कहते कहते अटक गया।

गोविन्द ने पूछा—"पर क्या ?"

"पर आप लोगों के साथ खेलने की हिम्मत नहीं हुई।"

"क्यों ?"

"ऐसे ही।"

"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई।"

इस पर जग्गू बोला—"मैं बताता हूं। कल रात हम दोनों ने आपस में तय किया था कि आप सभी के साथ होली खेलेंगे, सुबह से दो तीन बार हम लोग इधर आये, मगर वापिस चले गये।"

"वापिस क्यों चले गये ?"

गोविन्द के इस प्रश्न का उत्तर श्यामू ने दिया। वह बोला—"बात यह है, गोविन्द भैया, कि हमें शर्म आ रही थी।"

"शर्म तो बुरा काम करने पर आती है, तुमने क्या बुरा काम किया है ?"

"बुरा काम तो नहीं किया, मगर आप सभी लोग हम से बड़े हैं—।"

गोविन्द ने बीच में ही बात काट दी—'कहाँ बड़े हैं ? कैसे बड़े हैं ? लम्बाई में या चौड़ाई में ?"

"मेरा मतलब कि आप पढ़े लिखे लोग हैं। हम सोचते रहे कि पता नहीं हमारे साथ होली खेलना पसन्द करें या न करें।

"अच्छा ! तो छोटे बड़े का भूत तुम्हारे दिमाग में भी है। ठहरो, अभी तुम्हें ठीक करते हैं।"

गोविन्द ने सभी मित्रों को आवाज दी। कई मित्र भरी हुई पिचकारियाँ लेकर वहाँ आ पहुँचे और इन दोनों को रंग से तरबतर कर दिया। इन्होंने भी सभी के मुँह पर गुलाल लगाया। गोविन्द ने अरुण से शिकायत के स्वर में कहा—"देखो अरुण, ये दोनों अपने आपको अनपढ़ समझकर हम से भागते हैं।"

"भागकर जायेंगे कहाँ, हम इन्हें अनपढ़ ही नहीं रहने देंगे।" अरुण ने कहा।

"हाँ, परीक्षा खत्म होने के बाद हम लोग ऐसे मित्रों को चुन चुनकर पढ़ायेंगे।" गोविन्द ने कहा।

श्यामू और अम्मू ने गोविन्द के मुँह से अपने लिए मित्रों का सम्बोधन सुना तो उनकी आँखों में प्रेम के आँसू छलक आये। श्यामू बोल पड़ा—"आप बहुत अच्छे हैं गोविन्द भैया।"

"तो लाओ इनाम दो।" गोविन्द ने श्यामू के आगे हाथ पसार दिया।

श्यामू तो उसका मुँह देखने लगा, फिर बोला—"मेरी क्या हस्ती है कि मैं आपको इनाम दे सकूँ। हाँ, यह शरीर, यह प्राण आपके हैं।"

"बस, बस। हमें तुम्हारा शरीर और प्राण नहीं चाहिये, तुम्हारी मित्रता चाहिये। कभी भी अपने आपको छोटा मत समझो। छोटे बड़े तो विचार होते हैं, इन्सान नहीं। भगवान ने सभी को एक जैसा बनाया।"

वे लोग बातें कर रहे थे कि अचानक एक चीख सुनाई दी। सभी ने चौंककर उधर देखा। दस बारह वर्ष के एक बालक के हाथ से एक शीशी नीचे गिरकर फूट गई थी और उसका पाँव उस फूटी हुई शीशी के कांच पर पड़ गया था। पाँव के नीचे कांच गहराई तक चुभने के कारण खून और से बह रहा था। फूटी हुई शीशी में तेल मिला हुआ [illegible] था, जो अब बिखर गया था। सभी उसके आस पास इकट्ठे हो गए। श्यामू ने उसके पाँव को दबाकर पकड़ लिया। अम्मू बिखरे हुए काँच को समेटने में लग गया।

बालक, जिसका नाम सतीश था, को लेकर अरुण और श्यामू उसके घर पहुँचाने चले। अम्मू [illegible] था कि एक लड़के ने आकर उसके मुँह पर गुलाल मल दिया।

अम्मू गुलाल लगाने वाले को पहिचान नहीं सका और गुलाल ने पूरे [illegible] चेहरे को ढक लिया।

वह हँसकर बोला—"अरे क्या देख रहे हो, पहिचाना नहीं क्या ?"

अम्मू बुदबुदाया—"नहीं नहीं, मैं तो नहीं पहिचान सका।"

"अरे मैं वही केले वाला हूँ, जिसके तुम दाँत तोड़े रहे थे।"

पहिचानते हुए जग्गू ने कहा—"अरे हाँ, केले वाले बाबू, जिसने मुझे केला खिलाया था!"

"हाँ वही।"

अब जग्गू ने भी जेब से गुलाल निकाला और उसके मुँह पर लगाया। फिर उससे पूछा - "क्या यहीं रहते हो?"

"हाँ, सामने वाले मकान में।" उसने हाथ के इशारे से बताया।

"मुझे कैसे पहिचाना?"

"आओ मे। आओ, मेरे घर चलो।"

"नहीं, फिर किसी दिन चलूँगा।"

"आज तो दिन है, घर पर आने जाने का, और किसी दिन कब आयेगा। आओ, चलो।"

जग्गू इन्कार करता रहा, मगर वह उसे अपने घर ले ही गया।

गोविन्द को वहाँ खड़े रमेश ने बताया—"यह सतीश रात को हमारे साथ चबूतरे पर बैठा था। इसने भी वायदा किया था कि वह वानिस, तेल और कोयला फेंक देगा, मगर उसने फेंका नहीं। साथियों के साथ धोखा करने की उसे अच्छी सजा मिल गई। अब दस बारह दिन तक उसके पाँव में पट्टी बँधी रहेगी।"

गोविन्द को रमेश की यह बात अच्छी नहीं लगी। वह बोला—"किसी का बुरा होते देखकर खुश होना बुरी बात है। अगर उसकी नादानी की सजा उसे मिल सकती है, तो तुम्हारे गलत सोचने की सजा भी तुम्हें मिल सकती है। कोई कुछ भी करे, तुम सदा दूसरों का भला सोचो।"

गोविन्द की बात सुनकर रमेश शर्मिन्दा हो गया, फिर उसके साथ ही वहाँ से चल दिया।

ooo

८

काम नहीं, अनियमितता मनुष्य को खा जाती है

परीक्षाएँ शुरू हो गई थीं। लगभग सभी विद्यार्थी खेलना कूदना, खाना पीना और हँसना बोलना भूलकर रात दिन पुस्तकों में आँखें गड़ाये पढ़ने और रटने में लगे हुए थे। सभी के होश गुम थे। परीक्षा का यह हौवा अधिकांश विद्यार्थियों की नींद, भूख और आराम का शत्रु बन बैठा था।

कुछ ऐसे विद्यार्थी भी थे जो सुबह-शाम अपने दोस्तों के यहाँ कुछ इम्पॉर्टेन्ट और खास खास मसाले की तलाश में पहुँचते थे। घर बैठकर चुपचाप पढ़ने लिखने की अपेक्षा ये विद्यार्थी इम्पॉर्टेन्ट के सहारे परीक्षा पास करना चाहते थे। यदि मित्रों के यहाँ कुछ खास मसाला नहीं मिलता, तो दो-चार की टोली बनाकर अध्यापकों के यहाँ पहुँचते और उनको कुछ बताने के लिये खुशामदें करते, गिड़गिड़ाते। अच्छे और पढ़ने वाले विद्यार्थियों को ऐसे विद्यार्थी सदा ही बुद्धू और मूर्ख समझते हैं।

साल भर तक मौज और मजा करने से ही अन्त में परेशानी होती है। गलत ढंग से मजा लूटते वक्त यह पता नहीं चलता कि यह मजा अपने पीछे कजा और सजा भी छिपाकर खड़ा है। मछली आटा तो देखती है, मगर आटे के पीछे छिपा हुआ काँटा नहीं देख पाती, लेकिन दूरदर्शी मछली जानती है कि आटे के पीछे काँटा भी है, इसलिये वह आटे के पास नहीं आती। पर ... से विद्यार्थी इस सच्चाई को नहीं समझते। उनकी आँख और समझ मजा ... देखती है, उसके पीछे खड़ी सजा उन्हें दिखाई नहीं देती।

जिस प्रकार दस दिन तक कोई व्यक्ति खाना न खाये और ग्यारवें दिन पूरे दस दिन का इकट्ठा खाना खाने की इच्छा करे, तो वह सम्भव नहीं हो सकेगा। दस दिन का खाना, एक दिन में खा लेना तो नितान्त असम्भव बात है। अगर कोई व्यक्ति ऐसी कोशिश करेगा, तो वह अपने से ही दुश्मनी करेगा, क्योंकि ऐसी कोशिश करने में बीमार पड़ जाने की सम्भावनाएँ हैं। तो, वे विद्यार्थी, जो पूरे वर्ष पढ़ाई न करके परीक्षा के समय अथवा कुछ दिनों पूर्व पढ़ाई करने की बात सोचते हैं, वे एक प्रकार से उन्हीं लोगों के शिष्य हैं, जो दस दिन का इकट्ठा खाना ग्यारवें दिन खाना चाहते हैं।

ऐसे विद्यार्थी पूरे वर्ष तक अपने आपको ठगते रहते हैं। कोई दूसरा व्यक्ति हमारे साथ ठगी करे, तो हम पुलिस में खबर करते हैं और उसे दण्ड दिलवाने के लिये तैयार होते हैं, लेकिन जब हम खुद ही अपने को ठगेंगे तो कौन किसे खबर करेगा। ऐसे में दण्ड तो निश्चित रूप से हमें ही मिलेगा।

अपने आपको ठगने का यह काम भी एक मजेदार चीज है। साल के आरम्भ में कुछ विद्यार्थी यह सोचते रहते हैं कि अभी अभी तो स्कूल खुले हैं, ऐसी जल्दी भी क्या है, थोड़े दिन के बाद पढ़ाई शुरू करेंगे। थोड़े दिन गुजर जाते हैं, तो कोई त्यौहार, मेला या फिर मामा चाचा अथवा बुआ-मौसी की शादी आ टपकती है। फिर सोचा जाता है कि जरा यह शादी हो ले और भैया के यहाँ भाभी आ जाय, फिर डट कर पढ़ाई करेंगे। चलो, भैया की शादी हो गई और भाभी भी आ गई, अब ? अब दशहरा आ गया। दशहरा आकर जाने लगा तो यह हुआ कि दिवाली आ रही है, सो पटाखे छोड़ लें, मिठाईयाँ खा लें, फिर ऐसी पढ़ाई करेंगे कि सब दोस्त, आस-पड़ौस वाले और घरवाले देखते ही रह जायेंगे।

दिवाली भी आई और गई। अब क्या बहाना होगा ? अब बड़े दिनों की छुट्टियाँ पड़ने वाली हैं। रात को भी सर्दी लगती है और सुबह जल्दी उठा भी नहीं जाता। सुबह सुबह ठंड में उठकर पढ़ना तो जरा मुश्किल सा काम है। बस जरा ये सर्दी के दिन जायें, तो डटकर पढ़ाई शुरू करेंगे और कक्षा में प्रथम आकर बतायेंगे। सर्दी के दिन उतरे तो होली का राग सुनाई दिया। फिर निश्चय हुआ कि मित्रों के साथ होली के रंग का मजा लें फिर दिन-रात

और रात-भर ऐसे पढ़ेंगे कि दुनिया दंग रह जायगी। न रात को रात समझेंगे और न दिन को दिन, सिर्फ पढ़ेंगे और पढ़ेंगे। किसी से बात नहीं करेंगे, किसी से मिलेंगे नहीं। खाना भी पढ़ते पढ़ते खायेंगे। अपने घूमने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

इस तरह होली भी आई और गई। अब परीक्षा में कुछ ही दिन शेष रह गये। दूसरे पढ़ने वाले साथियों को देखा तो पता चला कि अभी तो बहुत कुछ पढ़ना है और समय बहुत कम है। अब पढ़कर तो परीक्षा पास नहीं कर सकते, इसलिये कुछ खास खास प्रश्न रट लेते हैं और कुछ इम्पोर्टेन्ट मसाला इकट्ठा कर लेते हैं।

इस प्रकार पूरे वर्ष तक अपने आपको ठगते रहने और अन्त में गलत तरीकों से परीक्षा पास करने की बात सोचने वाले विद्यार्थी प्रायः परीक्षा में तो पास हो ही नहीं सकते, साथ साथ वे जीवन की दौड़ में आगे बढ़ने और आत्मोन्नति करने के योग्य भी नहीं रहते।

परीक्षा में बार बार असफल होने से ऐसे विद्यार्थियों का मन भी पढ़ाई से हट जाता है। वे पढ़ाई को एक बोझ और मुसीबत समझने लगते हैं। बीच में ही पढ़ाई छोड़ने के बाद ऐसे लड़कों का भविष्य अन्धकार के निकट आ जाता है, क्योंकि शैक्षणिक, आर्थिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नति करने के लिये उनके जीवन में अधिक अवसर नहीं रहते।

पर गोविन्द, अरुण और राकेश ऐसे विद्यार्थियों में से नहीं थे। यद्यपि परीक्षाएँ आरम्भ हो गई थीं, तो भी वे नियमित रूप से रोज सुबह बगीचे में घूमने जाते थे, व्यायाम करते और शाम को खेलते भी थे। तीनों मित्र शुरू साल से ही नियमित रूप से अपनी पढ़ाई करते रहे थे। इन्होंने पढ़ाई के काम को इकट्ठा नहीं होने दिया था, अतः अब एकदम इकट्ठी पढ़ाई करने की जरूरत नहीं थी। ये गांधी जी की बताई गई बात को जानते थे और मानते थे कि काम की अधिकता नहीं, बल्कि अनियमितता मनुष्य को खा जाती है।

आज इतिहास की परीक्षा थी। गोविन्द और राकेश स्कूल की तरफ जा रहे थे। अन्य विद्यार्थी भी किताबें कापियाँ खोले, सड़क पर ही रट्टा

लगाते हुए, स्कूल की तरफ बढ़ रहे थे। इन दोनों के पास केवल अपना पेन और स्याही की दवात थी, जबकि अन्य कई विद्यार्थियों के पास किताबें, कापियाँ, नोट्स, लिखे हुए कागज, कतरनें तथा और भी न जाने क्या क्या था।

चेहरों पर चिन्ता और आशंका का भाव लिये, जल्दी और भागम-भाग में, ज्यादातर विद्यार्थी अशोक, अकबर, डलहौज़ी आदि के बारे में बातचीत कर रहे थे, जबकि गोविन्द और राकेश शान्त-चित्त, प्रसन्न-मुद्रा और चेहरे पर निश्चिन्तता के भाव लिये व्यायाम के विषय में बात कर रहे थे। राकेश कह रहा था— "सच गोविन्द, जब से तुमने चाट-पकौड़ी की मेरी गन्दी आदत छुड़ाई और व्यायाम करने के लिये अपने साथ लिया, तब से मुझे अपने शरीर में एक नई स्फूर्ति और शक्ति का अनुभव होता है।"

"मैं तो तुम्हें कब से कह रहा था कि हमें इस आयु में व्यायाम अवश्य करना चाहिये, मगर तुमने मेरी बात बहुत देर से समझी। संसार के जितने भी उन्नत और समृद्धिशाली राष्ट्र हैं, वहाँ के बालक अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देते हैं। सच तो यह है कि वे बचपन में स्वास्थ्य पर ध्यान देते हैं, इसी-लिये उनका राष्ट्र उन्नत और समृद्धिशाली बनता है। इन बालकों में सदा ही यह होड़ लगी रहती है कि कौन अपने शरीर को अधिक से अधिक सुन्दर और गठा हुआ बनायेगा। स्वस्थ शरीर होने से ही मस्तिष्क भी स्वस्थ रहता है। मस्तिष्क स्वस्थ होगा तभी तो कला और विज्ञान की अधिकाधिक उन्नति हो सकेगी, तभी तो अच्छे नागरिक और देशभक्त लोग मिलकर अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा कर उसे उन्नत बना सकेंगे। आज तो हमें इन बातों की नितान्त आवश्यकता है।"

राकेश को गोविन्द की बात बहुत अच्छी लगी। वह बोला — मैंने भी तुम्हारी दी हुई एक पुस्तक में पढ़ा था कि जिसका शरीर स्वस्थ है, उसका मस्तिष्क भी स्वस्थ है, जिसके विचार स्वस्थ हैं, उसके कर्म भी महान होंगे।"

"हाँ, शरीर, मस्तिष्क और विचारों की स्वस्थता की तो हमें कदम कदम पर जरूरत है। बड़े होकर यदि व्यापार करें, तो अच्छा मस्तिष्क चाहिए, नौकरी करें तो अच्छा व्यक्तित्व चाहिये। अन्य कुछ काम करें तो भी स्वस्थ शरीर के बिना काम आगे चल ही नहीं सकता।"

गोविन्द की बात सुनकर राकेश ने कहा—"अच्छा गोविन्द, यह बताओ कि तुमने भविष्य में क्या बनने का निश्चय किया है ?"

"भविष्य में क्या बनूंगा, इसके बारे में तो अभी विशेष निश्चय न किया, लेकिन एक अच्छा नागरिक और देशभक्त बनने की इच्छा बचपन से मेरे मन में करवट ले रही है।"

ये दोनो बातें करते हुए जा रहे थे, तो आँखों पर चश्मा चढ़ाये और हाथ में कापी किताबों का भारी-भरकम पोथा सँभाले, इनका सहपाठी मनोहर पीछे से तेज चलता हुआ इनके पास आया और गोविन्द से बोला—"अरे भाई गोविन्द, जरा जल्दी से बताना कि अशोक को महान क्यों कहते हैं ?"

गोविन्द ने एक नजर मनोहर की तरफ देखा फिर बोला—"बन्धु, क्षमा करना इस समय मैं तुम्हें कुछ भी बता सकने की स्थिति में नहीं हूँ।"

"क्यों, क्या हुआ ? तुम्हारी तबियत तो ठीक है ?"

"तबियत तो मेरी हमेशा ही ठीक रहती है, किन्तु इस समय अगर मैं तुम्हारी बातों में लग गया तो जरूर तबियत खराब हो जायगी।"

मनोहर ने आश्चर्य से गोविन्द की ओर देखा। वह उसकी बात का अभिप्राय नहीं समझ सका, इसलिये पूछ बैठा—"क्या मेरी बात इतनी खराब है कि उससे तुम्हारी तबियत खराब हो जायगी ?"

"तुम्हारी बातें तो रसभरी हैं मनोहर, मगर मैं इस समय परीक्षा सम्बन्धी कुछ भी बात करने के लिये तैयार नहीं हूँ।"

मनोहर हाथ नचाते हुए बोला— "कमाल है ! परीक्षाएँ चल रही हैं, हम लोग भी परीक्षा देने जा रहे हैं और तुम परीक्षा के बारे में कुछ बात करना नहीं चाहते। भला क्यों ?

"देखो मनोहर, मैं व्यर्थ बहस करके अपने दिमाग को भारी करना नहीं चाहता। परीक्षा देने से पहिले मैं अपने दिमाग को अधिक से अधिक हल्का और ताजा रखना चाहता हूँ। जो कुछ मुझे पढ़ना था, वह मैं परीक्षा से पहिले ही पढ़ चुका। तुमने साल भर तो पढ़ाई की नहीं और अब जब परीक्षा शुरू होने में चन्द मिनट बाकी हैं, तब तुम्हें अशोक याद आया है। मुझ पर इस

करो और तुम्हारे हाथ मे जो कापी किताबें हैं, इनमे पढ़कर देख लो कि अशोक को महान क्यों कहते हैं ।"

गोविन्द ने अपनी बात खत्म की ही थी कि शर्मा जी पास से तेज़ कदम भरते हुए गुजरे । राह चलते सभी विद्यार्थी नमस्ते द्वारा उनका आदर कर रहे थे । एकाएक कुछ सोचकर वे रुके और गोविन्द से बोले—"गोविन्द, जरा तेजी से हमारे साथ तो चलो, तुम से एक सूची लिखवानी है ।"

"चलिये सर ।" कहकर गोविन्द ने भी शर्मा जी के कदम से कदम मिलाकर चलना शुरू कर दिया ।

दोनों तेज कदम उठाते हुए आगे निकल गये ।

राकेश और मनोहर इन दोनो का जाना देखते रहे । गोविन्द की बात मनोहर को अच्छी नही लगी थी, इसलिये वह बोला—"कितना मिजाज है इ छोकरे को ! कुछ अच्छे नम्बर ले आता है, तो पता नहीं अपने आपको क समझने लगा है !"

गोविन्द के विरुद्ध कही गई यह बात राकेश को अच्छी नहीं लगी रोषपूर्ण शब्दों मे वह बोला—"मिजाज की इसमे क्या बात है, उसने ठीक ह तो कहा है । फिर अच्छे नम्बर लाता है, तो मेहनत करके लाता है, तुम भ अच्छे नम्बर लाओ और अपने आपको कुछ समझो ।"

"मैंने तो गोविन्द को कहा, तुम्हें बुरा क्यो लग गया ?"

"गोविन्द को कहो या मुझे कहो एक ही बात है । पीठ पीछे किस की बुराई क्यों करते हो ? बुराई तुम्हारे मे है और देखते दूसरों में हो ।"

गोविन्द के पक्ष मे और अपने विरोध मे राकेश की तीखी बात सुनकर मनोहर भी तन गया । ऊँचे स्वर मे वह बोला—"क्या बुराई है भई मुझ मे ? क्या बुरा किया ? किसका बुरा किया ? क्या बुराई देखी तुमने ?

"साल भर तक तो पढ़ाई नही करते । इधर-उधर घूमने, गप्पे मारने और हँसी मज़ाक मे समय उड़ाते हो और अब परीक्षा के वक्त इससे पूछ उससे पूछ, इसको पकड़ उसको तंग कर, यह सब बुराई नहीं तो और क्या है ।"

इतनी बात सुनकर मनोहर तो अन्दर और बाहर से एक हो गया
रूखे स्वर में बोल पड़ा—"अरे तो क्या तेरे पैसों से घूमते और मज़ा करते हैं
अपनी जेब के पैसे खर्च करके मज़ा लेते हैं, तेरे पेट में दर्द क्यों होता है !"

"मेरे पेट में दर्द क्यों होने लगा, तू घूम या मज़ा ले मुझे क्या !
दूसरों के गले क्यों पड़ता है। साल भर तक तो पढ़ाई की नहीं, अब परीक्षा
के समय कुछ आता नहीं, तो झुंझलाहट दूसरों पर निकालता है। वही बात
हुई कि खिसियाई बिल्ली खम्भा नोचें !"

"अरे चुपकर ! बड़ा आया बिल्ली का भाई चूहा।"

मनोहर की बात खत्म हुई, तो पीछे से अरुण भी आ पहुँचा। मनोहर
के कन्धे पर दोस्ती और प्यार का हाथ रखते हुए उसने कहा—"क्या बिल्ली
और चूहों की बात चल रही है, मनोहर सेठ।

मनोहर ने मुड़कर देखा तो बोला—"अरे कुछ नहीं यार, वह है
गोविन्द, मैंने उससे यूँही ज़रा अशोक के महान होने के कारण पूछ लिये, तो
लगा बड़ी बड़ी बातें करने। कहने लगा कि परीक्षा के समय दिमाग हल्का
और ताज़ा रखता हूँ, वहम करना नहीं चाहता. यह नहीं करता, वह नहीं
करता। अच्छा, वह चला गया, तो जब यह तीस मार खाँ लम्बी लम्बी बातें
करने लगा। कहता है—पीठ पीछे बुराई मत करो, पढ़ाई करो, अच्छे नम्बर
लाओ। जिसे देखो वही दादा या ताऊ बना फिरता है। मैं कहता हूँ, ये लोग
दुनिया में क्या करेंगे, किसका भला होगा इनके हाथों से ! अपने सहपाठी
के लिये इतना नहीं कर सकते कि उसे ज़रा सी बात बता दें ! क्यों अरुण
तुम्हारा क्या ख्याल है, तुम भी तो कुछ कहो।"

"तुम कहने दोगे तो मैं कुछ कहूँगा।"

"मैंने क्या तुम्हारा मुँह पकड़ा है ?"

"पर तुम चुप होओ तो मैं बोलूँ।"

"दुनिया में चुप कौन है, जिसे देखो वह बोलता है। कोई मीठा बोलता
है, कोई कड़ुवा बोलता है, कोई सामने बोलता है, कोई पीछे बोलता है। दुकान
पर दुकानदार बोलता है, थाने में थानेदार बोलता है, चिड़ियाघर में चिड़िया

ती है, सड़कों पर मोटरें चोलती हैं।"

अरुण ने राकेश की तरफ देखा फिर मनोहर से बोला—"तुम्हारी न बहुत तेज चलती है मनोहर।"

"मेरी जबान को ही क्यों दोष देते हो भाई, दुनिया में सभी चीजें तेज ती है। पटरी पर रेलगाड़ी, दरजी की कैंची, नाई की मशीन, धोबी की ी, सभी का चलना चलाना तेज है। हाँ, तो मैं बात कर रहा था, उस विन्द की और इस राकेश की। ये लोग किसी की मदद करने के लिये तैयार ं। इन लोगों ने फालतू बातें करके समय नष्ट कर दिया मगर मुझे बताया ं कि अशोक को महान क्यों कहते हैं।"

"यह तुम्हें नहीं मालूम?" अरुण ने पूछा।

"तुम भी क्या बच्चों जैसी बातें करते हो, अगर मालूम होता तो क्या से पूछता?"

"मैंने समझा कि तुम्हें और ढेर सारी बातें मालूम हैं, यह तो जरूर मालूम होगा।"

"अरे क्या खाक मालूम होगा, इस हिस्ट्री ने तो नाक में दम कर दिया ।" कहते कहते मनोहर रास्ते में पड़े एक पत्थर से ठोकर खा गया। उसे थर पर गुस्सा आया। उसने पलटकर पत्थर को एक लात मारी। लात मारते क पाँव की चप्पल निकल गई और नंगा पाँव पूरी शक्ति के साथ पत्थर से जा कराया। पाँव में चोट लगी और वह दर्द से चीख पड़ा—"हाय! मर गया! ता नहीं कौन मूर्ख हैं, जो रास्ते में पत्थर डाल देते हैं। किसी का हाथ-पाँव टे इनकी बला से।"

अरुण ने रुक कर पूछा—"जोर से लगा क्या?"

मनोहर ने भी दर्द में बेचैन होकर कहा—"जब लगती है तो जोर ही लगती है।"

"अच्छा तो अब अशोक को महान क्यों कहते हैं, प्रश्न के उत्तर में क्या लखोगे?"

"लिख दूँगा कि वह हिन्दुस्तान का बहुत बड़ा बादशाह था, उसने बड़ी

बड़ी लड़ाईयाँ जीतीं, बड़े-बड़े काम किये। स्कूल खुलवाये, कॉलेज खुलवाये वगैरा वगैरा।"

"पर यह प्रश्न आज परीक्षा में आ रहा है क्या?"

"आयगा और जरूर आयेगा।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि आयेगा?"

अरुण के प्रश्न पर मनोहर फिर नाराज हो गया। वह बोला—"मैं क्या झूठ बोलता हूँ? बकवास करता हूँ? मुझे क्या नहीं मालूम! हाँ अशोक को महान कहे जाने के कारण बराबर नहीं मालूम, बाकी भूगोल, विज्ञान, कला, गणित, हिन्दी संस्कृत किसी भी विषय में पूछो। मैं गोविन्द नहीं, मनोहर हूँ मनोहर! मनोहर कभी किसी की मदद करने से पीछे नहीं हटता। मैं तो हमेशा दूसरों के लिये अपना सब कुछ चढ़ाने के लिये तैयार रहता हूँ, समझे?"

विद्यालय पास आ चुका था। गेट के बाहर तथा गेट के अन्दर कम्पाउण्ड में दो-दो, चार-चार की टोलियों में लड़के खड़े हुए आपस में परीक्षा में आने वाले सम्भावित प्रश्नों पर बहस कर रहे थे। कई विद्यार्थी अलग अलग कोने में बैठे किताब या कॉपी में आँखें गड़ाये हुए, सिर हिलाते हुए कुछ रट रहे थे। कहीं कोई विद्यार्थी किसी अन्य विद्यार्थी को कुछ समझा रहा था। कोई कोई विद्यार्थी किसी प्रश्न के आने और न आने पर आपस में बहस करते हुए शर्त लगाने के लिए तैयार हो रहे थे! मनोहर एक लड़के की तरफ लपकते और लगड़ाते हुए बढ़ा। उसे आवाज देकर बोला—„अरे ऐ किशन, जरा ठहर, क्या कटे हुए पतंग की तरह चला जा रहा है। मुझे एक प्रश्न तो बता दे।"

किसन नाम का लड़का ठहर गया। मनोहर उसके पास पहुँचकर कहने लगा—"अरे, मुँह क्या देख रहा है मेरा! जरा बोल जल्दी से कि अशोक को महान क्यों कहते हैं? जल्दी कर, घंटी बज जायगी! तू बोल, मैं एक कागज पर लिख लेता हूँ।"

कागज और पेन निकालने के लिये मनोहर ने जेब में हाथ डाला। जेब में न तो कागज था न पेन ही। उसने घबराकर अपनी सारी जेबें टटोल डालीं, ... उसे पेन कहीं भी नहीं मिला। वह और अधिक घबराया। उसने लड़कों

से पेन माँगा, लेकिन किसी के पास भी एक ज्यादा पेन नहीं था। अब तो उसे पसीना आने लगा

यह देखकर राकेश ने अरुण से पूछा—"पेन के बिना यह परीक्षा कैसे देगा?"

अरुण ने भी तिरस्कार-भाव से कंधे ऊँचे करके कहा—"कौन जाने! मैंने इसे कई बार समझाया है कि बक-बक करने की आदत छोड़ दे। मैं ही क्या, सभी इससे तंग हैं, सभी ने इसे समझाया है, मगर यह मानता किसी की नहीं। अपनी बक-बक, झक-झक करता रहता है।"

राकेश ने उसकी बात को पुष्ट करते हुए कहा—"तुम नहीं आये, इसमें पहिले मुझसे लड़ने को तैयार हो गया था, अगर गोविन्द होता तो उसके भी गले पड़ जाता। यह तो अच्छा हुआ कि शर्माजी पीछे से आये और उसे अपने साथ ले गये।"

अरुण ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"वैसे यह लड़का दिल का बुरा नहीं है, बातें ज्यादा करने और डींगें मारने की आदत जरूर है।"

"पर ऐसी बातों और डींगों का क्या फायदा, जिससे पढ़ाई में हर्ज होता हो, और भविष्य बिगड़ता हो। सारा साल तो मौज करने, डींगें मारने और गप्पें उड़ाने में बीता दिया, अब इसमें उससे पूछता ताकता फिरता है। परीक्षा देने चला है और अपनी कलम-पेन्सिल का भी होश नहीं है।"

राकेश की बात खत्म हुई ही थी कि एक ओर से मनोहर और दूसरी ओर से गोविन्द इसी ओर आते दिखाई दिये। तभी घंटी भी बज उठी। मनोहर घबराया हुआ अरुण के पास आया और गिड़गिड़ाकर पूछने लगा—"अरुण तुम्हारे पास कोई पेन है?

अरुण ने स्पष्ट उत्तर दिया—"मेरे पास तो सिर्फ एक ही पेन है और मुझे परीक्षा देनी है।"

मनोहर का चेहरा एकदम उतर गया। रुआँसा होकर उसने राकेश से पूछा—"तुम्हारे पास है क्या?"

"नहीं मेरे पास भी एक ही पेन है।"

गोविन्द ने मनोहर की बात सुन ली थी और उसकी हालत भी देख ली थी। अपनी जेब में लगे दो पेन में से एक निकालकर मनोहर की तरफ बढ़ाते हुए उसने कहा—"लो इससे काम चलाओ।"

मनोहर ने लजाते हुए पेन लिया और बोला—"गोविन्द, तुम बहुत अच्छे हो। पता नहीं, मैंने तुम्हें क्या क्या कह दिया। भई, मेरी बातों पर ध्यान मत देना और माफ कर देना।"

"जो कुछ अच्छी बातें तुम कहोगे, मैं सिर्फ वही ध्यान में रखूँगा, बाकी की बातों पर मैं ध्यान ही नहीं देता। चलो घंटी बज गई है।"

आँखों ही आँखों में गोविन्द का आभार मानते हुए मनोहर सभी के साथ परीक्षा-भवन की ओर बढ़ गया।

ooo

९

आदमी को आदमी किस मोड़ पर मिलेगा

परीक्षाएँ खत्म हुईं और कुछ ही दिनों बाद परीक्षा-फल घोषित हुआ। गोविन्द ६वीं कक्षा के चारों विभागों में प्रथम आया। अरुण और राकेश भी अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए, लेकिन मनोहर फेल हो गया। फेल होने पर मनोहर रोया नहीं, दुखी भी नहीं हुआ, बल्कि एक चेतन-भाव उसमें जागृत हुआ। वह अरुण से मिला, तो कहने लगा—

"अरुण, मैं फेल नहीं हुआ बल्कि मेरी नादानी फेल हो गई। मैंने इस सच्चाई को जान लिया और मान लिया है कि ज्यादा बातें करने वाला और पूरे साल भर मौज करके अन्त में परीक्षा में पास होने की इच्छा रखने वाला विद्यार्थी कभी भी पास नहीं हो सकता।"

अरुण ने उसका मन रखते हुए कहा—"धीरज रक्खो मनोहर, आदमी ठोकर खाकर ही सम्भलता है। लाख रुपये का हाथी भी ठोकर खा जाता है सो हम तुम तो अभी बच्चे ही हैं। यह अच्छा हुआ कि तुमने अपने आपको पहिचान लिया। आत्म निरीक्षण उन्नति का प्रथम सोपान है।"

मनोहर ने विदा लेते हुए कहा—"अच्छा अरुण, मैं तुम या गोविन्द जैसा तो नहीं बन सकता, मगर फिर भी तुम लोगों के कदमों पर चलने की कोशिश करूँगा।" इतना कहकर वह चला गया।

अरुण को जल्दी ही गोविन्द के घर पहुँचना था। जब वह वहाँ पहुँचा तो राकेश, शेखर तथा अन्य अनेक मित्र पहिले से ही वहाँ मौजूद थे और पिक-निक का प्रोग्राम बना रहे थे। गोविन्द के बार बार मना करने पर भी सभी

ने मिलकर दस रुपये इकट्ठे किये और नगर से दूर भानु-सरोवर पर जाकर पिकनिक मनाने का निश्चय किया। गोविन्द अब तक अपने मित्रों को समझा नहीं सका था, लेकिन अरुण के पहुँचने से उसकी स्थिति मजबूत हो गई। उसने अरुण से कहा—"देखो अरुण, ये सब मिलकर दस रुपये भानु सरोवर के पानी मे डालने की तैयारी कर रहे हैं।"

अरुण उसकी बात नही समझा। इस पर शेखर ने उसे समझाते हुए कहा—"देखो भई, बात यह है कि हम सभी मित्र पास हो गये हैं। पास होने की खुशी मे हम लोग भानु सरोवर की बगीची मे चलकर पिकनिक मनाने का विचार कर रहे हैं, मगर गोविन्द नही नही की रट लगाये जा रहा है।"

अरुण ने बात समझकर गोविन्द से कहा—"पंच तो परमेश्वर होते हैं। जैसे पंच कहे, तुम्हें मान लेना चाहिये। पंच आज खुशी मनाना चाहते हैं, तो होने दो पिकनिक।"

गोविन्द बोला—"पंचो का फैसला सिर आँखों पर, मगर पंचो से भी ज्यादा महत्वपूर्ण एक महान व्यक्ति की बात मेरे दिमाग मे घूमती है।"

"वह क्या बात है ?" शेखर ने पूछा।

"उन्होंने कहा था कि जब तक हमारे देश मे एक भी आदमी नंगा और भूखा है, तब तक हमारा काम खत्म नही होगा।"

"किसने कहा था ?" अरुण ने प्रश्न किया।

"पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था।"

नेहरू जी का नाम सुनकर सभी के चेहरे श्रद्धेयभाव से गम्भीर हो गये। उस महापुरुष की पावन-स्मृति ने सभी की आँखो मे श्रद्धा की एक तरलता उत्पन्न कर दी। शेखर बोल पड़ा—"नेहरू जी ने जो कुछ कहा उससे हमारे पिकनिक चलने अथवा न चलने मे क्या सम्बन्ध है ?"

"बहुत गहरा सम्बन्ध है। हमारे देश और समाज के लोग नंगे भूखे रहें, बेघरबार रहें और हम खुशियाँ मनाते फिरें, पिकनिक को जायें, क्या यह हमें शोभा देता है ?"

"लेकिन गोविन्द, हमारे जीवन मे खुशी का भी तो कुछ स्थान होना

देने चाहिएं।"

"और बाकी के पांच रुपये ?" किशन ने पूछा।

"उनका भी कुछ अच्छा ही उपयोग होगा। तुम सब लोग अगर मेरे विचार से सहमत हो तो कहो, कुछ कार्य-क्रम बनायें।"

गोविन्द के इस प्रश्न ने सभी की आँखों को प्रश्नवाचक बना दिया। सभी एक दूसरे की तरफ देखने लगे। अन्त में राकेश ही बोला—"हम तो सभी तुम्हारे साथ हैं, तुम जैसा कहोगे, वैसा ही करेंगे। पर तुमने तो कहा था कि परीक्षाएँ खत्म होने के बाद निरक्षरता-उन्मूलन और भिक्षावृत्ति-उन्मूलन के लिए कुछ किया जायगा।"

"हाँ, कहा था और मैं अकेला जितना कुछ कर सकता था, उतना शुरू किया भी है। यह तो तुम सभी जानते हो कि लोक-कल्याण जैसा काम एक आदमी से नहीं हो सकता, उसके लिए पूरा सहयोग चाहिए। फिर मैं तो अभी पूरा आदमी भी नहीं हूँ, आधा ही आदमी हूँ ऐसा कह सकते हो।"

गोविन्द की इस बात पर सभी को हँसी आ गई, लेकिन राकेश बोल उठा—'आधे आदमी होकर भी तुम आदमियों जितना ठोस विचार व्यक्त कर सके हो। खैर! यह बताओ कि हम किस तरह कहाँ-कहाँ काम करें ?"

...ं को छज्जूराम की रसभरी बातें मजेदार लगीं। वे मुस्करा... ने भी मुस्कराते हुए जवाब दिया—"मैं तो अच्छा ही हूँ, लेकिन ... भी ज्यादा अच्छी आपकी बातें हैं।"

"थोड़ी भी, हम गवांर अनपढ़ लोगों की बातों में क्या रक्खा है! मजेदार बातें तो तुम जैसे पढ़े लिखे लोगों को आती हैं। हाँ भैया, श्यामू के लिए एक दिन तुम कुछ कह रहे थे, याद है क्या?"

"मुझे अच्छी तरह से याद है छज्जूराम जी, आप चिन्ता न करें। मोहल्ले के सभी विद्यार्थियों ने फैसला किया है कि शाम को किसी न किसी निरक्षर को एक घंटा रोज पढ़ाया करें। मैं श्यामू को पढ़ाया करूँगा। आप देखना कि थोड़े ही दिनों में श्यामू आपको चिट्ठियां खुद पढ़ने लगेगा और दुकान का हिसाब किताब भी सम्भाल लेगा।"

गोविन्द से यह आश्वासन पाकर छज्जूराम बहुत खुश हुआ। उसके दिल की गहराईयों से दुआओं की घटा उमड़ी और मुंह के मार्ग से होती हुई गोविन्द पर बरस पड़ी—"भगवान करे तुम दिन दुनी और रात चौगुनी तरक्की करो! दुनिया में चारों तरफ तुम्हारे नाम का डंका बजे।"

"बस करो छज्जूरामजी, डंका कहीं जोर से बज गया तो कानों के पर्दे फट जायेंगे।"

"यह देखो, कहता हूं न कि पढ़े लिखे लोगों से बात करके तबियत खुश हो जाती है। क्या खूबसूरत जवाब दिया है। मेरा श्यामू होता, तो खड़ा खड़ा मुंह ही देखता रहता। खैर! आओ, आज तो कुछ फल खाकर जाओ। देखो, आज इन्कार न करना गोविन्द भैया, वर्ना मैं नाराज हो जाऊँगा।"

"अगर आज इन्कार नहीं करूँगा, तो फल खिलाना आपको महंगा पड़ेगा। देख नहीं रहे हो, हम कितने लड़के हैं। एक, दो, तीन, चार——।"

छज्जूराम बीच में ही उसकी बात काटकर बोला—"बस बस, रोज बहाने बाजी नहीं करने दूंगा। एक हो या सौ हों, आज मैं मानने वाला नहीं हूँ। दौलत का गरीब हुआ तो क्या हुआ, दिल से गरीब नहीं हूँ। आप को क्या मालूम कि आप लोगों को देखकर मेरा दिल कितना खुश होता है। आईये, चलिये

"अच्छा, एक दो नारंगियाँ ही छिलता हूँ आप लोग वही खा लें।" कहते हुए उसने एक नारंगी छिली और तुरन्त दूसरी उठाकर छिलने लगा। इस पर गोविन्द बोला—"यह क्या करते है?"

"कुछ नहीं, मुझे लगा पहिले वाली नारंगी मीठी नहीं, खट्टी थी, इसलिये यह छिलने लगा। बस, इसके बाद नहीं छिलूंगा।"

छज्जूराम के इस स्नेहपूर्ण व्यवहार से सभी गदगद हो गये। उसने भी मुस्कराते हुए पूछा—"अच्छा चीकू और नारंगी की बात नहीं करता, एक-एक केला तो चलेगा?"

"बिल्कुल नहीं चलेगा।" अरुण ने कहा।

"अरे, आप भी गोविन्द भैया की तरफ हो गए, मुझ गरीब का साथ दीजिये। मैं समझता हूँ कि एक एक केला चलेगा ही नहीं, बल्कि दौड़ेगा, क्यो गोविन्द भैया?"

"ठहरेगा भी नहीं, चलना और दौड़ना तो दूर की बात।" गोविन्द ने कहा।

तभी पोस्ट-ऑफिस की तरफ से एक चपरासी आया और दस पैसे छज्जूराम की तरफ बढ़ाकर बोला—"दो केले दो।"

"पोस्ट-ऑफिस से आ रहे हो?" पैसे लेते हुए छज्जूराम ने कहा।

मुंशी जी का नाम सुनकर छज्जूराम का मुंह फूल गया। दस पैसे वापिस लौटाते हुए वह बोला— 'मुंशी जी से कहना कि वे दिन हवा हुए जब दस पैसे के दो केले मिलते थे। दो केले के लिये पचास पैसे लाओ।"

"क्या, एक केला पच्चीस पैसे का!" उस चपरासी ने चौंक कर पूछा।

"हां, पच्चीस पैसे का एक केला, सिर्फ मुंशी जी के वास्ते, दूसरों के लिये सिर्फ पांच पैसे का।"

"मुंशी जी पर यह नाराजगी क्यों?"

"नाराजगी की इसमें क्या बात है, दुकानदारी है। मुंशी जी भी तो चिट्ठी पढ़ने के लिये पच्चीस पैसे लिये बिना किसी को पास से खड़ा तक नहीं होने देते। वे क्या सोने के हैं और हम क्या मिट्टी के हैं। उनका भाव ऊंचा है, तो हमारा भाव भी ऊंचा है।"

आस पास में फलों की और कोई दुकान नहीं थी। केले लेने के लिये उस व्यक्ति को दूर जाना [illegible], अतः वह गिड़गिड़ाकर बोला—"अब जाने भी दो मुंशी जी की बातें। लो दस पैसे और केले दो।"

"बावले हुए हो, दस पैसे में दो तो क्या, एक भी नहीं आयगा। वह देना मुंशी जी से।"

छज्जूराम का हठ देखकर चपरासी लौट पड़ा। गोविन्द और उसके साथियों ने भी यह देखा और सुना। छज्जूराम बोला— 'देखा न गोविन्द भैया, जीवन में कब, कहां और किस मोड़ पर आदमी आदमी से मिल जायगा, यह कहा नहीं जा सकता। उस दिन मुंशी जी मुझे दुत्कार कर यही समझे कि शायद अब मुझ से उनका कभी काम नहीं पड़ेगा, मगर ऐसा होता नहीं। आदमी का काम आदमी से ही पड़ता है।"

इस पर गोविन्द ने कहा—"छज्जूराम जी, अगर आप यह मानते हैं कि आदमी का काम आदमी से पड़ता है, तो उसे बुलाईये और मुंशी जी के लिये दे दीजिये। पता नहीं फिर आपका काम उनसे पड़ जाय।"

गोविन्द की बात सुनकर छज्जूराम भौंचक्का रह गया। वह सामने खड़े

इस कम उम्र के ज्ञानी-ध्यानी को सिर से पाँव तक देखने लगा, जिसने उसकी रस्सी से उसी के हाथ बाँध दिये थे। उसके मुँह से निकल पड़ा—"सचमुच गोविन्द भैया, तुम तो भगवान का ही रूप हो। जैसा नाम वैसा गुण।"

"तारीफ फुरसत में कर लेना, वह चपरासी चला जा रहा है, पहिले उसे बुलाईये और केले दीजिये।"

छज्जूराम ने उस चपरासी को पुकारा। वह लौट कर आया। केलों में से दो अच्छे से केले, एक चीकू और एक नारंगी उसे देते हुए कहा—"लो, यह मुंशी जी को देना और कहना कि गोविन्द भैया और उनके दोस्तों के पास होने की खुशी में छज्जूराम ने ये फल दिये हैं। उनसे यह भी कहना कि इन बच्चों की तरक्की के लिये भगवान से दुआएँ जरूर करें।"

चपरासी ने फल ले लिये। वह भी छज्जूराम के इस अनोखे व्यवहार पर हैरान था। वह सोचने लगा—घड़ी में तोला घड़ी में माशा, मिजाज क्या है तमाशा! सोचता सोचता वह चला गया।

गोविन्द नारंगी की आखरी फाँक मुँह में रख ही रहा था कि वही भिखारी लड़का गिड़गिड़ाकर, हाथ फैलाकर और याचना करता हुआ पास आकर बोला—"बाबूजी, एक पैसा दो।

उसे देखकर और पहिचान कर राकेश बोल पड़ा—"गोविन्द, यह वही लड़का है, जिसे उस दिन तुमने बिस्कुट और नारंगी देकर भीख का धन्धा छोड़ने के लिये कहा था।"

गोविन्द ने उसे पहिचान लिया। उसने भी गोविन्द को पहिचान लिया। वह कुछ भयभीत सा होकर चलने लगा तो राकेश ने उसे हाथ पकड़कर कहा—"डरो मत, तुम्हें कुछ कहेंगे नहीं।"

गोविन्द ने उससे पूछा—"भूख लगी है?

"हाँ लगी है।" उसने कहा।

"क्या खाओगे?"

"कुछ भी।"

"हमारी बात मानोगे?"

"क्या?"

"भीख माँगना छोड़ दो, हम तुम्हें पॉलिश की डब्बी और ब्रुश देंगे। तुम पॉलिश करके अपना पेट भरो। फिर तुम्हे पहिनने के लिये अच्छे कपड़े भी मिलेंगे, रहने के लिये अच्छी जगह भी मिलेगी। हम तुम्हें पढ़ायेंगे, फिर तुम एक अच्छे आदमी बन जाओगे।"

"पर मुझे पॉलिश करना नहीं आता।" गंगू ने कहा।

राकेश बोला—"वह भी हम तुम्हे सिखायेंगे।"

गंगू विचार में पड गया। उसको विचारमग्न देखकर राकेश फिर बोला—"सोचते क्या हो! तुम सारे दिन मारे मारे फिरते हो, हर किसी के आगे हाथ फैलाना और गिडगिड़ाना पड़ता है। कोई दुत्कारता है, कोई फटकारता है। कभी पेट भरता होगा, कभी नहीं भी भरता होगा। न सोने की जगह, न रहने का ठिकाना। सारे दिन भटकने के बाद भी मिलता क्या है? मेहनत करोगे तो अच्छे पैसे कमाओगे और सुखी हो जाओगे। बोलो—क्या कहते हो?"

गंगू को भी लगा कि यह बाबू ठीक कहते हैं। भिखारी के अनिश्चित जीवन में बूट-पॉलिश करके पेट भरने वाला निश्चित जीवन उसे पसन्द आया। उसने सहमति देते हुए कहा—"अच्छा चलो, तुम कहोगे, वैसा ही करूँगा।"

सभी मित्र छज्जूराम से विदा लेकर वहाँ से चल दिये। वह भी इन लोगों का जाना देखता रहा। वह सोचने लगा, काश! मेरा श्यामू भी पढ़ा लिखा और गोविन्द जैसा ही होनहार होता तो मेरी गर्दन और आँखें भी गर्व से ऊँची उठी रहतीं, मगर मेरे ऐसे भाग्य कहाँ! गोविन्द के पिता ने अच्छे कर्म किये होंगे, जिससे उन्हे ऐसी होनहार सन्तान के पिता होने का सौभाग्य मिला। आज गोविन्द के कारण सभी लोग उसके पिता को भी पहिचानते और इज्जत [illegible]। सन्तान हो तो ऐसी हो।'

[illegible] सोचता ही रहा और गोविन्द की मित्र-मण्डली आगे निकल कर भीड़ में ओझल हो गई।

०००

१०

किसी के साथ हँसो, किसी की तरफ मत हँसो

शर्मा जी के नेतृत्व में विद्यार्थियों की टोली नरसिंहपुर गाँव की ओर श्रमदान करने और सड़क बनाने चल पड़ी। सुबह का समय था। सभी एक ट्रक में बैठे हुए प्रयाण-गीत गाते हुए चले जा रहे थे। शर्माजी ड्राइवर के साथ बैठे थे। ट्रक में एक ओर तसले, कुदालियाँ और फावड़े भी पड़े हुए थे। कुल मिलाकर लगभग बीस-बाईस विद्यार्थी इस दल में थे।

ट्रक सड़क पर पूरी रफ्तार से भागा जा रहा था। सड़क के दोनों ओर पेड़ थे। कहीं कहीं कच्चे पक्के मकान और खेत-खलिहान भी थे। गाँव के लोग घास, सब्जी और दूसरे गट्ठर सिर पर लादे नगर की तरफ जा रहे थे। नगर से गाँव की ओर जाने वालों की संख्या कम थी। कोई इक्का दुक्का ही गाँव की तरफ जा रहा था।

एकाएक सभी लड़कों ने शोर मचाया—'रोको! रोको!!' ड्राइवर ने ट्रक रोक दिया। ट्रक रुकते ही कुछ लड़के नीचे कूद पड़े। शर्मा जी भी बाहर निकलकर देखने लगे कि क्या मामला है। लड़के नीचे कूदकर पीछे की ओर भाग रहे थे। सामने एक अत्यन्त जर्जर बुढ़िया सिर पर एक भारी सा घास का गट्ठर उठाये चली आ रही थी। उसके चलने से लगता था कि बोझ उसकी शक्ति से अधिक भारी है और वह किसी भी क्षण लड़खड़ाकर गिर जायगी। लड़के उसके पास पहुँचे। एक बोला—"बूढ़ी माँ, कहाँ जाना है?"

"अगले गाँव पिनाई तक।"

"तो आओ, हमारे साथ बैठ जाओ।"

"पर बेटा, मेरे पास का गट्ठर ?"

"अरे बूढ़ी माँ, तुम और तुम्हारा गट्ठर दोनों को हम अपने साथ बैठा लेते हैं।"

फिर चार लड़कों ने मिलकर बुढ़िया के सिर पर से घास का गट्ठर उठाया और लाकर ट्रक में पटक दिया। दो लड़कों ने सहारा देकर बुढ़िया को ट्रक में बैठाया। शर्मा जी चुपचाप सब देखते रहे। लड़के एक विवश बुढ़िया की मदद कर रहे थे, उन्हें भला क्या आपत्ति हो सकती थी। एक तरह से तो वे खुश थे कि लड़कों में दूसरों का दुख समझने की और उसे दूर करने की प्रवृत्ति है। वे अपनी सीट पर जा बैठे। लड़कों ने फिर शोर मचाकर हरा सिगनल दिया—"चलाओ, चलाओ।"

ट्रक फिर चल पड़ा, लेकिन ट्रक अभी आधा मील ही गया होगा कि वह फिर रुक गया। सामने सड़क के ठीक बीच में एक ट्रक खड़ा था, जिस पर भरी अनाज की बोरियों में से कुछ बोरियाँ नीचे गिर गई थीं। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि एक बकरी रास्ते में आ गई थी, जिसे बचाने के लिये ट्रक ड्राईवर ने ट्रक को झटके के साथ मोड़ा। ऐसा करने में एक बड़ा सा पत्थर पहिये के नीचे आ गया और ट्रक जोर से उछल पड़ा। इस उछाल से कई बोरियाँ नीचे आ गिरीं और साथ साथ उन बोरियों पर बैठा क्लीनर भी नीचे गिर पड़ा, जिससे उसके हाथ में काफी चोट आ गई। अब उस ट्रक-ड्राइवर के सामने यह समस्या थी कि उन सारी बोरियों को किस तरह उठाकर वापिस ट्रक पर लादा जाय।

[illegible] ने स्थिति को तौला और एक एक करके ट्रक से नीचे कूद गये और देखते ही देखते नीचे पड़ी बोरियों को वापिस ट्रक पर लाद दिया। ट्रक-ड्राईवर लड़कों की इस सहायता से बहुत प्रसन्न हुआ। आभार प्रकट करने के लिए उसने अपनी सीट पर रखे एक बड़े [illegible] [illegible] और [illegible] बार सब उन्हें दिए। लड़के मना करते रहे, मगर वह नहीं माना। क्लीनर के साथ वह ट्रक पर आ बैठा और मुस्कराते हुए [illegible] आगे बढ़ गया।

अब श्रमदल ट्रक भी आगे बढ़ा। ट्रक में चुपचाप बैठी बुढ़िया भी उकता गई। उसने एक लड़के से पूछा—"बेटा, तुम लोग कौन हो और कहाँ जा रहे हो?"

अरुण ने उत्तर दिया - "बूढ़ी माँ, हम लोग विद्यार्थी हैं यानि कि पढ़ाई करने वाले लड़के हैं और नरसिंहपुर गाँव में एक छोटी सी सड़क बनाने जा रहे हैं।"

बुढ़िया को जैसे उसकी बात पर विश्वास ही नहीं हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तर्क करते हुए उसने पूछा—"अरे बेटा, सड़क तो मज़दूर लोग बनाते हैं, पढ़ने वाले लड़के तो पढ़ते हैं।"

"हाँ, मज़दूर लोग भी बनाते हैं, पर वे तो पैसे लेते हैं, हम पैसे नहीं लेते।"

बिना पैसे लिये पढ़ने लिखने वाले लड़कों द्वारा सड़क बनाने की बात बुढ़िया की समझ में नहीं आई। वह बोली—"तुम सब अच्छे लड़के मालूम होते हो। सभी की मदद करने के लिये तैयार रहते हो। पर तुम लोग सड़क मुफ्त में क्यों बनाते हो, पैसे क्यों नहीं लेते?"

बुढ़िया की शंका का समाधान अरुण ने किया। वह बोला—"माँ अपने घर का और अपने भाईयों का काम करने के पैसे कौन लेता है। यह पूरा देश हमारा घर है और इस देश के सभी लोग हमारे भाई हैं। अपने भाईयों का काम करना, उनकी मदद करना हमार कर्तव्य है।"

बुढ़िया तो बेचारी अनपढ़ थी। देश, मदद और कर्तव्य जैसी बातें भला उसकी समझ में क्या आती। फिर भी वह बोली—"हाँ, सभी उस भगवान के बेटे हैं और आपस में भाई भाई हैं। भाई अपने भाई की मदद नहीं करेगा, तो और कौन करेगा!"

बुढ़िया के मुँह में दाँत नहीं थे, अतः जब वह अपने पोपले मुँह से बोलती थी, तो कुछ लड़कों को हँसी आने लगती, लेकिन हँसने वाले मुँह पर हाथ रखकर या मुँह फेरकर हँसी रोकने का प्रयत्न भी करते थे। बुढ़िया से यह बात छिपी नहीं रही। वह मुस्कराते हुए बोल ही पड़ी—"अरे बेटा, क्या

हँसते हो मुझ पर ! क्या करूँ, बूढ़ी हो गई, मुँह मे दाँत नहीं रहे। बुढ़ापे में ऐसा हो ही जाता है।"

एक लड़का जिसे सचमुच हँसी नहीं आ रही थी, बोल पड़ा—"नहीं, बूढ़ी माँ, हम तुम पर नहीं हँसते।"

"अरे बेटा, हँसो तो भी क्या है ! मेरे बेटे पोते भी तो हँसते हैं। पर अपनी इस बूढ़ी माँ की एक बात जरूर जरूर ध्यान में रखना कि दुनिया में रहकर किसी के साथ जरूर हँसो, मगर किसी की तरह नहीं हँसना।"

बुढ़िया के इस नीति-वाक्य का अर्थ किसी की भी समझ में नहीं आया। बुढ़िया भी समझ गई कि उसकी बात को अच्छी तरह समझा नहीं गया है। वह फिर बोली—"बेटा, मैं कहती हूँ कि कभी किसी पर हँसना नहीं चाहिये, किसी की मजाक नहीं करनी चाहिये, ऐसा हँसना भला नहीं होता। हँसी वह अच्छी, जो सब को भली लगे। हमारे हँसने से किसी का मन दुखी हो, तो ऐसी हँसी किस काम की। वैसे तुम तो सभी बड़े भले लड़के हो, मैंने तुम्हें नहीं कहा। ऐसे ही बात पर बात आई तो कह दिया।"

बुढ़िया की बात खतम हुई तो फिर से सामूहिक शोर गूंज उठा—"रोको ! रोको !!"

ट्रक रोक दिया गया। ट्रक रुकते ही लड़के नीचे कूद पड़े।

सड़क से हटकर एक कच्चे रास्ते पर एक बैलगाड़ी के पहिये गीली मिट्टी में धँस गये थे। गाड़ीवान नीचे उतरकर बैलों की पीठ पर जोर से लकड़ी पटकारे जा रहा था। बैल थोड़ा सा हिलते, कोशिश करते, मगर गाड़ी नहीं निकल रही थी। पूरा का पूरा श्रमदल दौड़कर गाड़ी के पास जा पहुँचा। पहले तो गाड़ीवान इस छोटी सी सेना को देखकर घबरा गया, लेकिन जब उसने सभी के मुस्कराते हुए चेहरों पर अपनत्व की छाप देखी तो आश्वस्त हुआ।

अरुण ने गाड़ी के नीचे इधर उधर देखा। एक पहिये के नीचे उसकी नजर गई, तो वह गाड़ीवान से बोला—"बैलों की जान क्यों ले रहे हो चौधरी, इनसे नहीं, नीचे पत्थर है।"

गाड़ीवान ने नीचे झुककर देखा। सचमुच एक पहिये के नीचे पत्थर

था जो कीचड़ के कारण स्पष्ट नजर नहीं आ रहा था। उसने बैलों को प्यार से पुचकारा और पीछे हटाया। गाडी कुछ पीछे हट गई। पत्थर से बचाकर गाडी को सबने धक्का लगाया। गाडीवान ने भी बैलों को आगे बढ़ाया। पहियों से बनी मिट्टी की गहरी पटिटयों में से गाड़ी दौडती हुई निकल गई। लडके खुशी से उछल पड़े। गाड़ीवान भी हँसता हुआ और हाथ हवा में हिलाता हुआ अपने रास्ते चला गया।

श्रमदल फिर से ट्रक मे आ बैठा। शर्मा जी भी लडकों की मस्ती और दौड़ दौड़ कर लोगों की सहायता करने की गतिविधियों पर मन्द मन्द मुस्करा रहे थे। वे खुश थे।

ट्रक दौड़ा चला जा रहा था। अपनी बस्ती को समीप जानकर बुढ़िया बोली—"बस बेटा, मैं आगे वाले कुँए के पास उतर जाऊँगी। भगवान तुम्हारा भला करे, तुम्हे नेकी दे, बुद्धि दे।"

ट्रक फिर रुक गया। बुढ़िया को सहारा देकर उतारा गया। उसके गट्ठर को भी धीरे से उसके सिर पर रखवा दिया गया। जाते जाते बुढ़िया फिर दुआएँ देने लगी।

अब नरसिंहपुर थोड़ी ही दूर रह गया था। चन्द मिनट बाद ही ट्रक वहाँ जा पहुँचा। सभी नीचे कूद पड़े। शर्मा जी भी उतरे। तसले कुदालियाँ और फावड़े उतारे गये। अपना अपना सामान लेकर और सड़क से हटकर सब बरगद के एक घने पेड़ के नीचे आ गये। पास ही एक कुँआ भी था, जहाँ कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थी। कुछ गन्दे और मैले-कुचैले बच्चे भी वहाँ खेल रहे थे। नगर के इन बाबुओं को देखकर कौतूहलवश वे बच्चे पास आ गये। एक बड़ा सा बच्चा वहाँ आकर खड़ा हुआ तो गोविन्द ने उसे पुचकारा और पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा ?"

इस प्रश्न पर वह अपने साथी बच्चों की तरफ देखकर हँस पड़ा। दूसरे बच्चे भी एक दूसरे का मुँह देखकर हँसने लगे।

"अरे हँसते क्या हो, नाम बताओ।" एक अन्य लड़के ने कहा।

इस बात पर सभी बच्चे फिर हँस पड़े।

शर्मा जी भी वहाँ आ गये और उन्होंने सभी को कुछ आवश्यक बातें बताईं। फिर गाँव की तरफ किसी से मिलने के लिये चल दिये। लड़कों ने अपनी कमीजें उतारी और एक पेड़ के नीचे सभाल कर रख दीं। नेकर और बनियान पहिने, हाथों में कुछ न कुछ सभाले सभी तैयार हो गये। कुछ ही देर में शर्मा जी दो व्यक्तियों के साथ वापिस लौटे। एक तो गाँव के कोई चौधरी थे, दूसरे गाँव की प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक थे। उन्हें देखकर सभी लड़के शान्त हो गये और आदरसहित हाथ जोड़कर नमस्ते करने लगे।

चौधरी जी और अध्यापक महोदय बालकों की विनयशीलता, आदरभाव व अनुशासनप्रियता को देखकर बहुत खुश हुए। अध्यापक महोदय, जिनकी आयु लगभग पचास वर्ष की थी, शर्मा जी से बोले—"बड़े प्यारे बालक हैं।"

चौधरी जी भी बोले—"हाँ, बालक बहुत सुशील हैं।"

अपने विद्यार्थियों का गुणगान सुनकर शर्मा जी का मन बल्लियों उछलने लगा। केवल एक मिनट मात्र के परिचय में ही बालकों ने दो अनजान व्यक्तियों पर अपनी विनयशीलता, अनुशासनप्रियता और सुशीलता की छाप छोड़ दी थी। मन ही मन प्रसन्न होकर वे बोले—"हाँ चौधरी जी, इस विषय में मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली मानता हूँ। दुनिया के बड़े से बड़े आदमी को भी वह सुख प्राप्त नहीं, जो मुझे प्राप्त है। ऐसे प्यारे, सुशील, विनयशील और उत्साही बालकों का अध्यापक होने का सौभाग्य मुझे मिला, और मुझे क्या चाहिये।"

अध्यापक महोदय और चौधरी दोनों ने लड़कों से कुछ बातें की, फिर उन्हें साथ लेकर उस ओर गये, जहाँ सड़क बनाई जाने वाली थी। कुछ कदम चलने पर ही वह कच्चा रास्ता आ गया, जिसे सड़क में बदलना था। उस रास्ते पर बड़े बड़े गड्ढे हो गये थे। ऊँची नीची और ऊबड़-खाबड़ पट्टियाँ बन गई थी।

शर्मा जी ने गोविन्द, अरुण तथा अन्य दो-एक विद्यार्थियों के साथ उस स्थान और रास्ते का निरीक्षण किया। तय हुआ कि उस रास्ते को खोद खोद कर पट्टियों को खत्म किया जाय तथा वहाँ की जमीन को समतल बना दिया

जाय। फिर आस पास पड़े ढेरों छोटे बड़े पत्थरों में से बड़े बड़े पत्थरों को वहां जमाकर उस पर छोटे छोटे पत्थर बिछाकर ऊपर से मिट्टी डाल दी जाय।

यह सब तय करके शर्मा जी ने भी अपना कुर्ता उतार कर एक पेड़ पर टांग और अपनी धोती को घुटनों तक चढ़ा लिया। यह देखकर एक लड़का बोला—"सर, यह आप क्या कर रहे हैं, आप सिर्फ हमें बतायें, बाकि का काम हम कर लेंगे।"

शर्मा जी बोले—"जैसे बतायें वैसे खुद भी करें, तो ज्यादा आनन्द आता है।"

चौधरी जी जिनकी आयु अध्यापक महोदय से भी अधिक थी, कहने लगे—"फिर तो हम भी तैयार हो जाते हैं, सभी साथ में काम करेंगे।"

अध्यापक महोदय भी कह उठे—"और क्या, आप लोग काम करें और हम देखते रहें, ऐसा तो नहीं हो सकता।"

चौधरी जी और अध्यापक महोदय ने शर्मा जी के साथ काम करने की जिद की, लेकिन वे नहीं माने, हार कर ये लोग लड़कों के कपड़ों की देखभाल करने, उन्हें पानी पिलाने आदि के काम में लग गये। लड़के भी शर्मा जी से आराम करने और एक तरफ बैठ जाने के लिये अनुनय-विनय करते रहे, लेकिन वे न तो अपनों में बड़ों को काम करने देना चाहते थे और न ही छोटों को अकेला छोड़ना चाहते थे। अतः वे भी काम में जुट ही गये।

उन्होंने श्रमदल को दो भागों में बाँट दिया। एक को खुदाई करने और दूसरे को मिट्टी समतल करने का काम सौंपा गया। सौ गज लम्बी सड़क का यह टुकड़ा ढाई तीन घण्टे में ही समतल कर दिया गया। श्रमदल के उत्साह, कार्यशीलता, लगातार मेहनत और सामूहिक प्रयत्न ने सुसगठित योजना के आधार पर शीघ्र ही यह काम समाप्त कर लिया।

सभी के शरीर से पसीने की लटें छूट रही थीं। हाथ पांव धूल में भर गये थे, लेकिन थकान का तो नामोनिशान भी किसी के चेहरे पर नहीं था।

किसी काम को करने में दिलचस्पी हो, उत्साह हो, ईमानदारी हो और उसे अपना काम समझ कर किया जाय तो थकान नहीं होती, बल्कि एक आनन्द

गा आता है। वैसा ही आनन्द इन सब बालकों को आ रहा था। ऊपर से चिलचिलाती धूप, नीचे से तपती हुई धरती, नंगे पाँव, गर्मी के मारे मुँह भी लाल, मगर क्या मजाल की किसी के मुँह से शिकायत या असन्तोष का कोई स्वर भी फूटे। न थकान, न शिकायत, न असन्तोष, बस काम और काम। चाचा नेहरू का आराम हराम है, नारा सभी ने जीवन में धारण कर लिया था। अतः शिकायत और थकान से मुँह मोड़कर सभी ने उत्साह और काम से नाता जोड़ रक्खा था।

इनको इस प्रकार जी तोड़ मेहनत करते देखकर गाँव के युवक भी इनके साथ आ जुटे। काम और तेजी से चल पड़ा। दूर खड़े गाँव के बच्चे स्त्रियाँ और उधर गुजरते ग्रामीण इन्हें सड़क बनाता देखकर कौतूहल-वश खड़े हो जाते थे। बड़ी बूढ़ी औरतें और आदमी भी लकड़ी का सहारा लेकर, इन लोगों को देखने आ पहुँचे थे।

बारह बजते बजते बड़े पत्थरों के बिछाने का काम खत्म हो गया। चौधरी जी, जो दो-तीन तौलिये हाथ में थामे, लड़कों के बार बार मना करते पर भी, दौड़ दौड़ कर उनके शरीर से बहते पसीने को पोंछ रहे थे, यह दृश्य देखकर द्रवीत हो उठे। शर्मा जी ने काम रुकवा दिया और सभी बरगद के पेड़ के नीचे जमा हो गये। चौधरी जी, जो अब तक लड़कों का पसीना पोंछ रहे थे, अब अपनी आँख से आँसू पोंछने लगे। उनको इस स्थिति में देखकर शर्मा जी और अध्यापक महोदय उनके पास पहुँचे और बोले—"क्या बात है चौधरी जी, आप दुखी क्यों हैं?"

आँसू पोंछते हुए वे बोले—"मैं दुखी नहीं हूँ और ये आँसू दुख के नहीं, बल्कि खुशी के हैं। मैं माँ के इन लाडले बेटों को देखकर धन्य हो गया। मैं सोचता हूँ मेरे देश के ये बच्चे, मेरी धरती-माँ के ये बेटे बड़े होकर क्या कुछ नहीं करेंगे। इसी कच्ची उम्र और उठती हुई जवानी में इन लोगों के भीतर इतना जोश और उत्साह है कि ये अपने खून को पसीना बनाकर बहाने के लिये तैयार हैं, तो आगे चलकर ये देश और समाज की काया ही पलट कर रख देंगे। ऐसे सपूतों को पाकर भी क्या मेरी भारत-माँ भूखी और दुखी रहेगी? कभी नहीं रहेगी। भूख, दुख, परेशानी और समस्याओं के सूखे पत्तों को मेरे

इन नौनिहालों की जवानी और जोश आंधी बनकर उड़ा फेंकेगे। इन्हे देखकर मेरी आँखें और कलेजा ठंडा हो गया। इनके रूप मे आज मैंने धरती पर देवता देखे है।" अपनी बात खत्म करके चौधरी जी ने फिर अपनी आँखें पोंछी।

अध्यापक महोदय बोले—"हाँ शर्मा जी, ऐसे बालको को देखकर किसका मन प्रसन्न नही होगा! धन्य हैं वे माता-पिता जिनकी ये सन्तान हैं! और आप तो हैं ही भाग्यशाली!"

"अच्छा मास्टर जी, अब इन बच्चो के खाने पीने की फिकर करिये।" चौधरी जी ने कहा।

"वह देखिये सामने से खाना आ रहा है।" मास्टर जी ने उत्तर दिया।

सभी ने उधर देखा। गाँव की स्त्रियाँ, पुरुष व बच्चे हाथ मे पोटली, टोकरी, पत्तें, पानी की बाल्टी आदि लेकर इधर चले आ रहे थे। शर्मा जी ने पूछा—"यह सब क्या है?"

अध्यापक महोदय ने बताया—"जब से गाँव वालो को पता चला कि नगर के स्कूल के कुछ बालक यहाँ सड़क बनाने आ रहे है, तब से सभी खुश थे और सभी चाहते थे कि ये बालक खाना उन्ही के घर पर खायें, मगर मैंने समझाया कि एक घर मे सभी का खाना पीना नहीं हो सकेगा। आखिर तय यही हुआ कि सभी लोग अपने अपने घर से अपनी मर्जी के मुताबिक कुछ बनाकर लायेंगे, क्योकि ये बालक सारे गाँव के मेहमान है। बस वही कुछ ये लोग लेकर चले आ रहे हैं।"

आगे आगे कुछ लोग बड़ी बड़ी छः सात दरियाँ लिये चले आ रहे थे। उन दरियों को पेड़ के नीचे बिछा दिया गया।

कुछ लड़के कुँए के पास बैठे पसीना सुखा रहे थे, जिनका पसीना सूख गया था वे हाथ पाँव धोने मे लगे हुए थे। चौधरी जी ने और तीन चार खादी के तौलिये मँगवा लिये थे। वे खुद अपने हाथो से बालको के लाख मना करने पर भी उनके गीले हाथ पोंछ रहे थे। धीरे धीरे सब लोग बिछी हुई दरियों पर आकर बैठने लगे। पत्तलें सामने रख दी गई। भिन्न भिन्न घरो का, भिन्न भिन्न प्रकार, स्वाद व सुगन्ध का भोजन सामने रक्खा जाने लगा। शर्मा जी भी हाथ मुह धोकर आ गये थे। चौधरी जी ने उनसे भी बैठने का आग्रह

लिया। इस पर शर्मा जी ने चौधरी जी और अध्यापक महोदय दोनों से साथ बैठने का आग्रह किया। वे लोग भी साथ बैठ गये।

गाँव की स्त्रियाँ घूंघट की ओट से इन लड़कों को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देख रही थीं, जैसे गाय अपने बछड़ों को देखती है। गाँव के लड़के सभी को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न कर रहे थे। कुछ लोग इनकी तारीफ में तरह-तरह की बातें कर रहे थे। एक कह रहा था—"हर साल बरसात में यहाँ गाड़ियाँ उलटती हैं, मगर किसी ने इस रास्ते को ठीक नहीं किया। इन लोगों ने आकर आज ही आज में आधा काम खतम कर दिया है और आधा शाम तक कर देंगे।"

उसकी बात सुनकर पास खड़े एक दूसरे ग्रामीण ने कहा—"भई, यहाँ गाँव में सड़क ठीक कौन करता? फुरसत भी किसे है। शहर में स्कूलों की छुट्टियाँ हुई, तो चौधरी जी ने इन लड़कों को बुलवा लिया।"

तीसरे एक आदमी ने कहा—'कुछ भी कहो, जो काम सालों में नहीं हुआ, वही काम इन बच्चों ने देखते ही देखते कर दिया। बड़ी सड़क को गाँव से मिलाने वाला यही तो एक रास्ता है। अब हमेशा के लिये आने जाने का आराम हो गया। सच तो यह है कि इन बच्चों ने गाँव वालों पर बहुत उपकार किया है।"

अब फिर पहला वाला व्यक्ति बोल पड़ा—"अरे यहाँ तो ये छोटी-सी सड़क बना रहे हैं, पास के लक्ष्मीपुर गाँव में तो मैंने देखा कि इन्होंने मीलों लम्बी सड़क दो चार दिनों में ही बना डाली।"

दूसरा व्यक्ति फिर बोल पड़ा—"तभी तो हमारे पुरोहित जी कहते हैं कि ये स्कूल के बच्चे देश की बहुत बड़ी शक्ति हैं। भारत का भविष्य इन्हीं के हाथों में है और ये ही लोग सारे देश के लोगों को सुखी करेंगे।"

इस तरह गाँव के लोग इन बालकों को सराहते हुए अनेक प्रकार की बातें कर रहे थे। श्रमदल अब तक खा पीकर हाथ धोने में लग गया था। धोकर ये लोग पेड़ के नीचे कुँए की जगत पर और एक छोटे चबूतरे पर सुस्ताने लगे।

चौधरी जी, शर्मा जी और अध्यापक महोदक भी खा पी चुके थे और

एक दरी पर बैठे आपस मे बाते कर रहे थे। गाँव के स्त्री पुरुष धीरे धीरे अपनी अपनी पोटली बाँधकर, बार बार हाथ जोडकर नमस्ते करते हुए अपने घरो को लौटने लगे। कुछ बच्चे और युवक अब भी पानी पिलाने और सामान बटोरने मे लगे हुए थे। एकाएक चौधरी की दृष्टि गाँव के एक युवक पर पडी। उन्होने उसे बुलाया और नाच दिखाने के लिये कहा। इस अनोखे प्रस्ताव पर शर्माजी ने ताज्जुब से उनकी ओर देखा। उन्होने शर्माजी का कौतूहल शान्त करते हुए कहा—"हमारे गाँव का सब से अच्छा नाचने वाला और स्वाग भरने वाला लडका है। आप देखिये तो सही।

लडके ने नाच के साथ गाना शुरु किया। सभी लोग पेड के नीचे इकट्ठे हो गये। लोक-नृत्य और लोक गीत का मिला जुला रूप था। लडका ठेठ ग्रामीण भाषा मे गा रहा था, जिसे सभी नही समझ रहे थे लेकिन उसके हाव-भाव और अभिनय मे सभी को आनन्द आ रहा था। नृत्य व गान के साथ उसने एक लोक-कथा भी सुनाई।

कथा का भाव था कि एक व्यापारी का पुत्र बचपन मे ही भारत से बाहर विदेश मे चला गया। जब उसके माता पिता का देहान्त हो गया, तो वह वापिस भारत लौट आया। अब तक वह युवा हो चुका था। वह शादी करना चाहता था, लेकिन प्रश्न आ खडा हुआ कि शादी किससे करे। वह सारे भारत मे घूमा, लेकिन उसकी शादी नही हुई। कारण यह था कि उसे भारत की कोई भी भाषा नही आती थी, वह केवल विदेशी भाषा जानता था। उसने एक बगाली लडकी को पसन्द किया, किन्तु द्विविधा यह आई कि लडकी विदेशी भाषा नहीं जानती थी और वह बगाली भाषा नही जानता था। अत बात बैठी नही। गुजरात, राजस्थान, मद्रास, पजाब, मध्य प्रदेश, बिहार, केरल, आन्ध्र सभी स्थानो पर वह प्रयत्न कर चुका, लेकिन भाषा न जानने की वही समस्या दोनों ओर होने के कारण शादी कही भी तय नही हो सकी। वह निराश हो गया। केरल की राजधानी त्रिवेन्द्रम मे घूमते हुए एक दिन उसके पिता के एक पुराने मित्र उसे मिले। उसने उन्हे अपनी समस्या बताई तो वे खूब हँसे। हँसते हँसते लोट-पोट हो गये। फिर उसे कहा कि यदि वह जल्दी ही हिन्दी सीख ले तो समस्या दूर हो जायगी। युवक को तो अब भारत मे ही

रहना था, इसीलिये उसने तुरन्त ही हिन्दी सिखने की व्यवस्था की और कुछ ही महिनों में उसका विवाह हो गया।

लोक-कथा में पूर्ण यह नाच गाना इतना आनन्ददायक रहा कि सभी झूम उठे। युवक का कंठ मधुर था, अभिनय सुन्दर था, कथा का भाव भी उद्देश्यपूर्ण था। अच्छा मनोरंजन हुआ। नाच खतम होने पर युवक श्रमदल वालों से हाथ मिला मिलाकर अपने साथियों सहित वापिस अपने खेतों पर लौट गया।

खाना खाकर अब तक काफी आराम और मनोरंजन हो चुका था। अतः शर्माजी ने फिर से श्रमदल को सचेत किया और काम पर लगाया। अब छोटे छोटे पत्थरों को बड़े पत्थरों के बीच भरकर ऊपर से मिट्टी डालने का काम ही शेष रहता था। इस बार भी उसी रफ्तार, लगन और उत्साह से काम हुआ। गाँव के कुछ युवक अब भी इनके साथ जुटे हुए थे। धूप ढलते-ढलते यह काम भी पूरा होने को आया। काम करते करते अचानक गाँव के दो युवक आपस में लड़ पड़े। चौधरी जी ने उन्हें डाँटा तो वे अलग हुए, मगर एक दूसरे से मुँह फुलाये रहे।

काम खतम हुआ तो सभी खुशी से नाच उठे। गाँव वाले स्त्री-पुरुष फिर इकट्ठे होने लगे थे। छोटे बच्चे तो उस सड़क पर इस छोर से उस छोर तक और उस छोर से इस छोर तक भाग दौड़ लगाने लगे। शर्मा जी सभी बालकों के साथ फिर कुँए पर हाथ मुंह धोने लगे। हाथ मुँह धोकर सभी ने अपने अपने कपड़े पहिने और चलने की तैयारी करने लगे। गाँव के युवकों ने ही उनका सामान दूर सडक पर खड़े ट्रक में लदवा दिया। दो ग्रामीण युवक, जो आपस में लड़ पड़े थे, उनमें से एक ने कहा—"सड़कें बनती हैं, तो उनका कुछ नाम रक्खा जाता है, हम भी इस सड़क का कुछ नाम रक्खेंगे।"

चौधरी जी ने कहा—"यह सड़क इतनी बड़ी या महत्व की नहीं कि इसका नाम रक्खा जा सके।"

इस पर शर्मा जी बोले—"रख लेने दीजिये कुछ नाम, इनका भी मन हो जायगा।"

फिर उन्होंने प्रस्ताव रखने वाले उस युवक से पूछा—"कहो भई, क्या नाम रखना चाहते हो?"

युवक ने कुछ सोचा। वह प्राय. शहर जाया करता था। वहाँ अनेक सड़कों, स्थानों तथा भवनों के नाम महात्मा गांधी के नाम पर थे। इसलिए वह बोला—"महात्मा गांधी मार्ग।"

"नहीं, यह नाम तो नहीं रखा जा सकता।" शर्मा जी ने कहा

"क्यों?" युवक ने आश्चर्य से पूछा।

"इसलिये कि गांधीजी प्रेम, अहिंसा और शान्ति के पुजारी थे और तुमने अभी कुछ देर पहिले अपने साथी से लड़कर प्रेम, अहिंसा और शान्ति के सिद्धान्त को घायल कर दिया है। गांधीजी का नाम रखने से पहिले उनकी बताई हुई बातों को मन में रखना जरूरी है। क्यों ठीक है न?"

यह सुनकर युवक सोच में पड़ गया। एकाएक उसके दिमाग में कुछ आया और वह उछल पड़ा और बोला—"अच्छा तो पंडित नेहरू मार्ग नाम रखते हैं।"

"एक ही बात है। गांधी जी और नेहरू जी में ज्यादा फर्क तो नहीं था। पंडित नेहरू भी मानवता और भाईचारे के जबरदस्त हामी थे। जो अपने साथियों से लड़े, उसे पंडित नेहरू का पवित्र नाम अपनी जबान पर नहीं लाना चाहिये।"

अब तो वह युवक एकदम उदास हो गया। कुछ विचार करने के बाद वह फिर बोला—"तो लाल बहादुर शास्त्री मार्ग

'नहीं, यह भी नहीं। शास्त्री जी तो एकता और धैर्य में विश्वास विश्वास रखते थे। अगर तुम अपने साथी से न लड़कर एकता और धैर्य में विश्वास रखते, तो यह नाम रक्खा जा सकता था।"

इतना सुनते ही वह युवक लपक कर अपने साथी के गले में जा लगा जिससे उसका झगड़ा हुआ था। सभी खुश हो गये। शर्मा जी ने कहा—'हाँ, अब बात बनी है। देश के महापुरुषों के नाम को अमर रखने के लिये, उनके बताये मार्ग पर चलना होगा। अब तुम जो चाहो, सो नाम रख सकते हो।"

खुशी और दुख की एक अजीब सी स्थिति उत्पन्न हो गई। गाँव वाले सड़क देखकर खुश थे। और श्रमदल अपने श्रम की सफलता देखकर खुश था। चौधरी जी, अध्यापक महोदय तथा गाँव वालों के साथ कुछ घंटे बीता कर ही लड़के प्रेम और स्नेह में भीग गये थे। चौधरी जी की बातें तो मन में घर ही कर गई थी।

सभी बालकों ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उन्होंने सभी के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। शर्मा जी विदा लेकर ट्रक में जा बैठे। एक बार फिर दोनों ओर से हाथ जोडकर प्रेम विनिमय हुआ। ट्रक चल पड़ा। विदाई के हाथ दोनों ओर से हिलते रहे। सूरज ढल रहा था। उसकी उतरती किरणें पेड़ों की शाखों पर अटक गई थीं। ट्रक रफ्तार से शहर की ओर बढ़ने लगा।

ccc

११

पहिले माँ, फिर मौसी और फिर पड़ौसी

शर्मा जी को जब मालूम हुआ कि गोविन्द निरक्षरता और भिक्षा-वृत्ति के विरुद्ध डटकर मोर्चा लेना चाहता है, तो उनके प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। गोविन्द के एक दो परिचितो ने उसे निरुत्साह करते हुए कहा—"इतना बड़ा काम तुम्हारी शक्ति से बाहर है, क्यों बेकार के पचड़ों में पड़ते हो, चुपचाप अपनी पढ़ाई करो।"

ऐसी बातें करने वालो को गोविन्द ने भी मुँह तोड़ जवाब दिया—"उत्साह, लगन और सेवा-भाव के पीछे तो शक्ति का अकूत भंडार छिपा होता है। मैं छोटा हूँ, इसलिये मेरी शक्ति भी छोटी है, यह मैं नहीं मानता। अणु कितना छोटा होता है, लेकिन उसकी शक्ति विश्व-विख्यात है। बीज कितना छोटा होता है, लेकिन पृथ्वी, जल, धूप और वायु के सहयोग से वट-वृक्ष बन जाता है। आप मुझे सहयोग, प्रेरणा और प्रोत्साहन दे सकते हों, तो दीजिये, व निराशा भरे सुझाव कृपया न दें।"

निरुत्साहित करने वालो को तो गोविन्द ने सीधा और स्पष्ट उत्तर दे दिया, लेकिन शर्मा जी ने उसकी पीठ ठोकी। वे गर्मी की छुट्टियों में दक्षिण की ओर यात्रा करने का विचार कर रहे थे, किन्तु गोविन्द की भावना और उसके महान उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होने के लिये उन्होंने अपनी यात्रा का कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

बादल, राकेश, किशन, रमेश तथा अन्य कई मित्र गोविन्द के साथ आन्दोलन में लग गए। इन्होंने नगर के सभी मोहल्लों में जाकर वहाँ के विद्यार्थियों

से सम्पर्क किया। यद्यपि छुट्टियाँ शुरू हो गई थीं, फिर भी शर्मा जी विद्यालयों में जाकर किसी प्रकार वहाँ के अध्यापकों से मिले तथा उन्हें योजना, उद्देश्य व कार्यक्रम बताया। अध्यापकों को जब मालूम हुआ कि एक किशोर और स्कूल का विद्यार्थी एक महान उद्देश्य को लेकर चला है, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पूरा पूरा सहयोग देने का विश्वास दिलाया। अध्यापकों ने अपने मित्र अध्यापकों से सम्पर्क किया और सभी अध्यापकों ने मिलकर अपने आस पास रहने वाले विद्यार्थियों को प्रेरित किया कि वे भी इस महान-यज्ञ व कार्य में सहयोग दें।

योजना के अन्तर्गत सहयोग का अर्थ था कि प्रत्येक विद्यार्थी नित्य एक घंटा अपने मोहल्ले किसी निरक्षर को दे और उसे पढ़ाये। इस शुभ कार्य के करने से किसे इन्कार हो सकता था, बल्कि यह काम तो बालक चाव से करने के लिये तैयार हो गये।

नगर के विद्यार्थी-समाज में गोविन्द का नाम छा गया। छोटे बड़े सभी विद्यार्थी उस बालक को देखने के लिये उत्सुक हो उठे, जिसने इतनी छोटी आयु में इतना बड़ा चमत्कार कर दिखाने का बीड़ा उठाया। नित्य ही सैकड़ों की संख्या में विद्यार्थी गोविन्द से मिलने आने लगे। विद्यार्थियों के अलावा अध्यापकों पढ़े-लिखे लोगों तथा उन निरक्षरों को जिनके लिये यह कार्य शुरू हुआ था, गोविन्द से मिलने की उत्कंठा जागृत हुई।

पोस्ट-ऑफिस में गोविन्द के पिता रामनारायण को तो लोगों ने घेर ही लिया। बधाईयाँ और गोविन्द की तारीफ सुनते सुनते तो रामनारायण जी भी तंग आ गये। वे जिधर से भी गुजरते लोग उनकी ओर इशारा करके कहते कि वह इनका बेटा है, ये उसके पिता हैं। वे जहाँ भी चिट्ठियाँ देने जाते, वहीं स्त्री, पुरुष बालक-बालिकाएँ उनसे गोविन्द के बारे में अर्थात उनके पुत्र के बारे में बातें करने लगते। इधर गोविन्द की माँ भी खुशी से फूली नहीं समाती थी। आज सारा नगर उसके बेटे की चर्चा कर रहा था, इससे बढ़कर खुशी उसे जीवन में क्या मिल सकती थी।

गोविन्द ने श्यामू तथा छज्जूराम दोनों को रात्रि के समय एक एक घंटे

तक पढ़ाने का कार्यक्रम बनाया। राकेश ने जग्गू को पढ़ाने का भार सम्भाला। इसी प्रकार अरुण तथा अन्य सभी मित्रों ने मोहल्ले में एक एक निरक्षर को अक्षर-ज्ञान देना आरम्भ किया। अक्षर-ज्ञान के अतिरिक्त कुछ हिसाब-किताब भी बताया जाता था, लेकिन सब से मुख्य बात जो सिखायी जा रही थी वह थी—नागरिक-शिक्षा। नागरिक शिक्षा में प्रेम, भाईचारा, एकता, सहयोग, सेवा-भाव तथा देश व समाज को अधिक से अधिक सुखी करने की बात बताई जाती थी।

विक्रय के लिये नहीं

एक दिन गोविन्द और अरुण जल्दी में घर लौट रहे थे। जब वे छज्जूराम की दुकान के सामने से गुजरे तो देखा कि एक अजीब सा आदमी दुकान पर खड़ा केले खा रहा है और छिलके सड़क पर फेंकता जाता है। तभी एक छोटा बच्चा सामने से दौड़ता हुआ आया। वह केलों के छिलकों की तरफ ही बढ़ रहा था। गोविन्द चिल्लाकर उसे सावधान करता, इससे पहिले ही बच्चे का पाँव छिलके पर पड़ गया और वह रपटकर चारों खाने चित्त जा गिरा। गिरते ही वह रोने लगा। अरुण ने लपक कर उसे उठाया, पुचकारा और उसके हाथ पाँव झाड़ने लगा। कमर थपथपाने और सहलाने से वह जल्दी ही चुप हो गया।

गोविन्द ने सड़क पर बिखरे हुए छिलके उठाए और दुकान के नीचे रखी एक टोकरी में डाल दिए। वह आदमी अब भी आस पास घटी घटना से बेखबर और निश्चिन्त होकर केले खाने में लगा हुआ था। गोविन्द उसके पास जाकर खड़ा हो गया। उस आदमी ने एक और केला छीलकर छिलका सड़क की तरफ उछाल दिया। गोविन्द ने वह छिलका उठाकर फिर दुकान के नीचे रखी टोकरी में डाल दिया और फिर उस आदमी की बगल में खड़ा हो गया। उस आदमी ने गोविन्द को छिलका उठाकर टोकरी में डालते हुए देख लिया था। अब फिर उसके हाथ में केले का एक छिलका था। वह दुकान के नीचे रखी टोकरी देखने लगा। गोविन्द ने उससे कहा— लाईये मुझे दीजिए।

वह आदमी यह सुनकर कुछ सकुचाया। श्यामू भी गोविन्द की सहायता के लिये दुकान से नीचे आने लगा, लेकिन उसने उसे रोक दिया। उस आदमी ने ठिठक झुककर खुद ही वह छिलका टोकरी में डाल दिया। वह [illegible]

चुका था और अब जेब से रूमाल निकालकर मुंह पोंछ रहा था। गोविन्द ने उससे पूछा—"लगता है कि आप इस शहर में नये नये आये हैं?"

"यस, मैं न्यू हूं।" उस आदमी ने आधी हिन्दी और आधी अंग्रेजी में जवाब दिया।

"कहाँ से आये हैं?"

"व्हाट बताऊँ, वेयर से आया हूँ। अभी आई बोलूंगा, तो यू बोलोगे कि मैं टेलिंग लाई करता हूं।"

मुस्करा कर गोविन्द ने कहा—"नहीं, मैं कुछ नहीं बोलूंगा, आप कहें।"

"फर्स्ट मुझे माफ कर दो। आई ने केले का छिलका हियर-देयर फेंक दिया। बट, यू डॉन्ट वरी करो, आगे से हम छिलका देयर नहीं फेंकेगा, हियर बॉस्केट में फेंकेगा।"

"अच्छी बात है। वहाँ किसी का पाँव पड़ेगा तो चोट लगेगी।"

"यस यस! यू यंग है, बट वाइज है। खैर! आई हिन्दुस्तान में पैदा हुआ। बचपन में घर से रन-अवे किया, बम्बई रीच किया। उधर से जहाज केच किया और सारी वर्ल्ड में सैर किया। बैबीलोन का हैंगिंग-गार्डन देखा, डिआना का मन्दिर, इगलैंड का स्टोन हेंज, इस्तम्बुल का सेंटसोफिया का मस्जिद, सिकन्दरिया का लॉइट-हाउस, पीसा का झुका बुर्ज, मिस्त्र का पिरामिड यानि की वर्ल्ड का सब वन्डर्स देखा, बट अफसोस कि लाइफ में रिडिंग राईटिंग नहीं किया। आई को कुछ भी रिडिंग राईटिंग करने को नो आता।"

फिसल कर गिरने वाला बालक चुप होकर अपने घर की तरफ भाग चुका था। अकेला गोविन्द के पास खड़ा खड़ा इस अजीब आदमी की खिचड़ी भाषा में अजीब बातें सुनकर मुस्करा रहा था।

वह फिर कहने लगा—"दक्षिण अफ्रीका में वर्ल्ड का सबसे बिग बिड्डियापार्क क्रूगर नेशनल पार्क देखा, न्यूयार्क में वर्ल्ड का सबसे बिग स्टेशन ग्रांड सेन्ट्रल टरमिनल देखा, पेरिस में वर्ल्ड का सब से हाई ६८८ फीट का ऊंचा एफिल टॉवर देखा। क्रिकेट टेस्ट मैच में नरी कंट्रेक्टर, मनकड़, हजारे, मर्चेन्ट, नायडू, उमरीगर बापू नाडकर्णी, नवाब पटौदी, मांजरेकर, जयसिंह इन सब को ...

करते देखा । वर्ल्ड का बेस्ट क्लब मे डॉन्स किया, सिंग किया खूब ईट किया खूब मनी वेस्ट किया, बट रिडिंग राईटिंग नो आना ।"

वह कुछ रुका तो गोविन्द को बोलने का मौका मिला लेकिन वह फिर शुरू हो गया—"माई ब्रदर, आई को बहुत कुछ मालूम है। वर्ल्ड का एवरी लैंग्वेज स्पीक सकता है। वर्ल्ड का फेमस पोएटस का नेम बता सकता है। इटली का दाते, जर्मन का गटे फारसी का शेखसादी बगला का रवीन्द्रनाथ ठाकुर, उर्दू का गालिब, अंग्रेजी का शेक्सपीयर, हिन्दी का तुलसीदास संस्कृत का कालिदास सब का नेम आई का मालूम है, बट रिडिंग राईटिंग नो आना।"

तब आकर गोविन्द ने भी अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी बोलते हुए कहा—"वह सब तो रॉइट है, बट हमारी टॉक भी तो सुनो।'

"नो ब्रदर, फर्स्ट आई की टाक सुनो। आई ने वर्ल्ड का ग्रेट ग्रेट आदमी देखा। महात्मा गाँधी को देखा, जवाहरलाल नेहरू का देखा। इंगलैंड की क्वीन एलिजाबेथ, प्रेसिडेन्ट केनेडी, ड्रामाटिस्ट बर्नार्ड शॉ फिलासफर बर्ट्रेन्ड रसैल इन्डियन माइन्टिस्ट भाभा, रूस के यूरी गगारिन पंडित रवि शंकर इन सब को देखा, बट अफसोस कि आई को रिडिंग राईटिंग ना आना।'

"यू भी तो एक ग्रेट मेन हो।" अरुण ने कहा।

वह फिर बोल पड़ा—'ओ नो नो आई ग्रेट मन कैसे हो सकता है जिसे रिडिंग राईटिंग नो आता। रिडिंग राईटिंग आने के बाद ही ग्रेटमेन एवरीवन बन सकता है।"

उसकी बात खत्म हुई तो गोविन्द तुरन्त बोल पड़ा—'सब राइट है, बट आप यहाँ वेयर रहते है?"

"आई यहाँ स्टेशन के नियर एक हाउस मे रहता हूं, एन्ड नाउ इधर ही रहने का प्रोग्राम है। फर्स्ट कुछ रिडिंग राईटिंग सिखेगा, फिर एक बिग होटल मे वर्क करेगा।"

"होटल मे वॉट वर्क करेगा?"

"फूड तैयार करने का। आई एकदम टेस्टी एन्ड गुड फूड तैयार करता

है । आई ने वर्ल्ड का बिग बिग कन्टरी में बिग बिग सीटी में बिग बिग होटल मे फूड तैयार किया एन्ड बिग बिग आदमी को खिलाकर बिग बिग इनाम लिया । यूगोस्लाविया के केपिटल बेलग्रेड में, थाईलैंड के केपिटल बैंकाक में, पोलेन्ड के केपिटल वारसा में, मिस्त्र के केपिटल काहिरा और आस्ट्रेलिया के केपिटल कैनबरा मे आई ने गुड गुड फूड तैयार करके बिग बिग आदमी को खिलाया । आई माई की लाइफ मे एवरी वर्क बिग करना चाहता है, बट हाऊ करेगा ! रिडिंग राईटिंग नो आता ।"

अरुण फिर पूछ बैठा—"तो टु डे इस मोहल्ले में आना हाऊ हुआ ?"

"यस यस ब्रदर ! टु डे आई हियर लॉर्ड को ढूंढने को आया है ।"

"विच लॉर्ड ?" गोविन्द ने पूछा

"उस लार्ड के बारे में आई डॉन्ट नो है । ओनली यह मालूम है कि ही हियर का लॉर्ड है ।'

"हिज नेम क्या है ?" अरुण ने पूछा ।

"नेम भी आई को डॉन्ट नो है । बस ओनली यह मालूम है कि ही हियर का लार्ड है और सब का रिडिंग राईटिंग मे हेल्प करता है ।"

"यू को उससे क्या वर्क है ?" गोविन्द ने सवाल किया ।

"आई भी उससे रिडिंग राईटिंग करेगा । आई को मदर-टंग हिन्दी बराबर नहीं आता । आई को सीखना माँगता है ।"

अरुण बोल पड़ा—"बट यू को तो मेनी लैंगवेज आता है ।"

"तो वॉट हुआ ! ऑल थोड़ा थोड़ा आता है, फुल तो वन भी नो आता । आई सब लैंगवेज-से लव एण्ड प्यार करता है, बट मदर-टंग हिन्दी तो सिखना माँगता है ।"

"वाई?"

"वॉई वॉई वॉट ! आई के कन्टरी मे आई को माई का मदर-टंग नो आता । लोग आई का लैंगवेज सुनता और लॉफ करत, हंसता । नाऊ आई को ..र इंडिया मे रहना है, मदर टंग नो आयगा तो अपना कन्टरी का आदमी

मोंग मे टॉक हाऊ करेगा। अपना ब्रदर लोग से लॉफिंग, सिंगिंग हाऊ करेगा।"

"तो यू को मदर टंग से लव है, प्यार है?"

"वॉई नाट! है वेरी मच है।"

"दूसरा लेंगवेज से भी लव है? गोविन्द ने पूछा।

"यस है। वर्ल्ड का ऑल लेंगवेज से प्यार और लव है। आई को हेट और नफरत किसी भी लेंगवेज और मेन से नही है। बट अपना मदर टंग में ज्यादा लव और प्यार है।"

"मदर टंग बराबर स्पीक नो सकता, फिर लव कैसा है?"

अरुण के इस प्रश्न पर वह आदमी कुछ उत्तेजित हुआ। उसने अपनी मूछों पर हाथ फेरा और जोर से बोला—"बराबर स्पीक नो सकता, तो वॉट हुआ। लव है वेरी मच है। माई ग्रान्ड फादर बोलता था। सब से लव करो, घर मे स्पीक करो, हेट और नफरत किसी से मत करो, बट पहिले माँ, फिर मौसी और फिर पड़ोसी।"

बात के अन्त मे उसकी साफ हिन्दी सुनकर अरुण और गोविन्द दोनो हँस पड़े। अरुण ने पूछा—"इसका मतलब वॉट?

"मतलब यह कि फर्स्ट मदर टंग यानि हिन्दी आना माँगता है, फिर दूसरा लेंगवेज चलेगा। लव सब से ज्यादा माँ को, फिर मौसी को एण्ड फिर पड़ोसी को। लव सभी को करना माँगता है, बट हिसाब मे।"

उस आदमी की खिचड़ीनुमा अंग्रेजी सुनकर कई लड़के वहाँ इकट्ठे हो गये थे। भीड़ ज्यादा बढ़ती देखकर वह आदमी कुछ परेशान सा हुआ और बोला —"प्लीज आई को साई का पता बताओ, आई उसमे रीडिंग राईटिंग करेगा मदर टंग हिन्दी सीखेगा।"

मद्रास, आन्ध्र, बंगाल, पंजाब, राजस्थान मद्र प्रदेश में जायेगा और अदर मोग में मिलेगा। बट प्लीज, बताओ वह रिंहिंग राईडिंग वाला लार्ड किधर है?"

"बट लार्ड का नेम बताओ।" अरुण ने कहा।

"नेम आई को नो मालूम, लाली लार्ड मालूम है।"

"अच्छा, योर नेम वॉट है?"

"आई का नेम वन नही, मेनी है। बट, नाऊ हमने इन्डियन नेम रखा है। सर्वेन्ट आफ गॉड यानि रामदास।"

"अच्छा रामदास जी, आप अपना पता दे दें, हम लार्ड को आपके घर भेज देंगे, वह शाम को आपके घर पहुँच जायगा।" अरुण बोला।

"क्या सच!" खुश होकर उसने पूछा

"हाँ एकदम सच।"

फिर गोविन्द ने उसका पता लिख लिया और भीड़ को तीतर-बीतर करके वह अरुण के साथ घर की तरफ लौट पड़ा। रास्ते में गोविन्द ने अरुण से कहा—"अरुण, मुझे तुम्हारी वह बात बहुत पसन्द आई।"

"कौन सी बात?"

"वही कि जब भी किसी से बात करो, उसके मुँह से निकली हुई हर अच्छी बात को ध्यान में रख लो और बाकी की आलतू फालतू सभी बातें भूल जाओ।"

"हाँ, यह बात मुझे शर्मा जी ने ही बताई थी, मगर अभी इस बात का ध्यान कैसे आया।"

"मुझ से क्या पूछते हो, क्या तुमने उस आदमी की बातों में से कुछ अच्छी बात नहीं पकड़ी?"

अरुण ने कहा—"मैं तो उसकी भाषा सुनने का मजा लेता रहा, तुम्हीं बताओ, क्या बात थी।

"उसने कहा था कि पहिले माँ, फिर मौसी फिर पड़ोसी। मुझे उसकी

यह बात बेहद पसन्द आई। उसकी इस बात में कितनी जबरदस्त सच्चाई छिपी हुई है। वह कहता है कि प्यार सबसे करो, नफरत किसी से भी मत करो, पर पहिले माँ, फिर मौसी और फिर पड़ोसी। माँ से प्यार करने के लिये क्या यह जरूरी है कि मौसी या पड़ोसी से नफरत की जाय। मैंने तो प्रायः ऐसा ही देखा है कि किसी से प्यार करने के लिये लोग-बाग किसी न किसी से नफरत जरूर करते हैं। क्यों किसी से नफरत की जाय, सभी से प्यार करना चाहिये। पहिले प्यार करें और कितना प्यार करें, इसीलिये कई बार झगड़े उठ जाते हैं। प्यार के बँटवारे का कितना उम्दा, सही और न्यायसगत हिसाब बताया—माँ ने पैदा किया, इसलिये पहिला हक माँ का, मौसी ने गोद में उठाकर छाती से लगाया इसीलिये दूसरा नम्बर मौसी का। पड़ोसी ने प्यार किया, पुचकारा, दुलराया इसलिये मौसी के बाद हक पड़ोसी का। कितनी सुन्दर बात है। अगर सभी लोग इस बात को समझ लें और मान लें तो घरों के और पड़ोस के झगड़े ही खत्म हो जाय। सीधी सी बात और सीधा सा हिसाब है। पहिले माँ, फिर मौसी और फिर पड़ोसी।"

गोविन्द के मुँह से बार बार यह बात सुनकर अरुण हँसते हुए बोला—"तुम तो उसकी बात पर लट्टू ही हो गये।"

"हाँ बड़ी मजेदार बात है, जो नफरत खत्म करके प्यार ही प्यार सिखाती है। बात लाख रुपये की है, पर लोगों की समझ में आये तब! अहा! क्या बात है?! पहिले माँ, फिर मौसी और फिर पड़ोसी!!

उसकी बात को बदलते हुए अरुण ने कहा—"यह तो ठीक है, मगर वह अपने लार्ड को ढूँढता फिरता था, किसी ने तुम्हारा नाम बताया होगा, जो उसे याद नहीं रहा।"

"ऐसा ही कुछ लगता है। बेचारे को हिन्दी का चाव है, सीखा देंगे।"

ooo

१२

जलते दीप, महकते फूल

निरक्षरता-उन्मूलन अभियान में गोविन्द और उसके साथियों को बहुत ही कम समय में शानदार सफलता मिली। नगर के अध्यापक-वर्ग और सुधारवादी लोगों ने इस महान कार्य में पूरा पूरा सहयोग दिया। इस सफलता से प्रेरित होकर गोविन्द ने अब भिक्षा-वृत्ति-उन्मूलन के काम को पूर्ण करने का निश्चय किया।

नगर के एक सुधारवादी सेठ रामदयाल जी के कानों में जब गोविन्द का नाम और उसके कामों की चर्चा पहुँची तो उन्होंने तुरन्त अपनी कार भेजकर उसे बुलाया। गोविन्द उनके पास पहुँचा। सेठजी इस किशोर अवस्था को देख चौंक पड़े। उन्हें एकाएक यह विश्वास ही नहीं हुआ कि यह बालक वही गोविन्द हो सकता है जिसका नाम आज नगर के हर बच्चे, बूढ़े और जवान की जबान पर है। उसे देखकर उन्हें लगा कि जीवन के पचपन वर्ष व्यर्थ ही गँवा दिये। इतनी आयु में भी वे नगर के लोगों उतने विख्यात नहीं हो सके थे, जितना विख्यात कि सामने खड़ा पन्द्रह सोलह वर्ष का गोविन्द चन्द दिनों में और इस छोटी आयु में हो गया था।

आगे बढ़कर उन्होंने प्यार और स्नेह से उसके सिर पर हाथ रखा और पूछा—"तो तुम्हीं गोविन्द हो?"

"जी हाँ।"

"बैठो।"

"आप बैठिये।"

सेठ जी उसके इस शिष्टाचार पर मुग्ध हो गये। उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और कहा—"धन्य हैं वे माता-पिता, जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया।

फिर वे एक कुर्सी पर बैठ गये और गोविन्द को भी अपने पास ही एक कुर्सी पर बैठाकर कहा—"मैंने तुम्हारे बारे में बहुत कुछ सुना है, तुम्हारे काम और महान उद्देश्य की चर्चाएँ भी सुनी हैं। यह सब जानकर मैं बहुत खुश हुआ हूँ। तुमने महात्मा गांधी, पंडित नेहरू और विनोबा भावे की परम्परा को कायम रखकर उसमें नई जान डाल दी है। निरक्षरता उन्मूलन के बाद अब तुम भिखारियों को नया जीवन देने का विचार कर रहे हो यह वास्तव में देश और समाज को तुम्हारी महान देन होगी।"

गोविन्द चुपचाप सेठ जी की बातें सुनता रहा, जहाँ आवश्यकता होती, वहाँ संक्षेप में विनय तथा शिष्टाचारपूर्वक उनकी बात का उत्तर दे देता। अन्त में सेठ जी ने भिखारियों को नए ढंग से बसाने के लिये शहर से दूर अपनी दो एकड़ जमीन दान में देने का विचार कह सुनाया। गोविन्द बहुत खुश हुआ। वह विदा लेकर चलने लगा, तो सेठ जी ने प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"तुम जैसे होनहार बालक ही रचनात्मक कार्यों द्वारा देश को उन्नति के महान शिखर पर ले जा सकते हैं। भगवान करे तुम अपने शुभ उद्देश्यों व सद् मन्सूबों में सफल होओ।"

वहाँ से चलकर गोविन्द सीधा शर्मा जी के पास पहुँचा और सेठ जी द्वारा दी गई दो एकड़ भूमि की बात कह सुनाई। सुनकर वे भी प्रसन्न हुए। शाम को सभी मित्र-गण मिले और मोहल्ले के वाचनालय में एक सभा हुई। इस सभा में मित्रों व विद्यार्थियों के अतिरिक्त नगर के अनेक विद्यालयों के अध्यापक भी थे।

भिखारियों को भीख मांगने से रोकने के लिए पहले यह जरूरी था कि उनकी रोजी रोटी की व्यवस्था की जाय। उनके रहने, उनके खाने पीने और काम धन्धे का प्रबन्ध किया जाय अत तय हुआ कि सेठ जी द्वारा दी गई जमीन पर झोंपड़ियाँ खड़ी की जायें और इस प्रकार एक छोटी सी बस्ती बनाकर उस पुरुषार्थनगर का नाम दिया जाय, जहाँ भिक्षा-वृत्ति छोड़ने वाले पुरुषार्थियों को बसाकर कुछ गृह-उद्योग अथवा छोटा-मोटा काम आरम्भ किया जा सके।

१२

जलते दीप, महकते फूल

निरक्षरता-उन्मूलन अभियान में गोविन्द और उसके साथियों को बहुत ही कम समय में शानदार सफलता मिली। नगर के अध्यापक-वर्ग और सुधारवादी लोगों ने इस महान कार्य में पूरा पूरा सहयोग दिया। इस सफलता से प्रेरित होकर गोविन्द ने अब भिक्षा-वृत्ति-उन्मूलन के काम को पूर्ण करने का निश्चय किया।

नगर के एक सुधारवादी सेठ रामदयाल जी के कानों में जब गोविन्द का नाम और उसके कामों की चर्चा पहुंची तो उन्होंने तुरन्त अपनी कार भेजकर उसे बुलाया। गोविन्द उनके पास पहुंचा। सेठजी इस किशोर अवस्था को देख चौंक पड़े। उन्हें एकाएक यह विश्वास ही नहीं हुआ कि यह बालक वही गोविन्द हो सकता है जिसका नाम आज नगर के हर बच्चे, बूढ़े और जवान की जबान पर है। उसे देखकर उन्हें लगा कि जीवन के पचपन वर्ष व्यर्थ ही गंवा दिये। इतनी आयु में भी वे नगर के लोगों उतने विख्यात नहीं हो सके थे, जितना विख्यात कि सामने खड़ा पन्द्रह सोलह वर्ष का गोविन्द चन्द दिनों में और इस छोटी आयु में हो गया था।

आगे बढ़कर उन्होंने प्यार और स्नेह में उसके सिर पर हाथ रखा और पूछा—"तो तुम्हीं गोविन्द हो?"

"जी हां।"

"बैठो।"

"आप बैठिये।"

पर इतने बड़े काम के लिये धन की आवश्यकता थी। गोविन्द ने सुझाया कि घर-घर और दुकान-दुकान जाकर चन्दा इकट्ठा किया जाय। शर्मा जी को यह सुझाव ठीक लगा। उन्होंने सभी अध्यापकों से प्रार्थना करते हुए कहा—"एक बड़े उद्देश्य को सफल बनाने के लिये हमें छोटे कष्ट उठा लेने चाहिये। यदि हमारे नगर के सभी विद्यार्थी छोटे छोटे समूह बनाकर अपने अपने मौहल्लों व घरों से चन्दा इकट्ठा करें, तो बहुत बड़ी रकम इकट्ठी हो सकती है। लेकिन विद्यार्थियों के समूह के साथ एक एक अध्यापक रहे तो ज्यादा ठीक होगा। ऐसे में उद्देश्य की पवित्रता का ध्यान रखते हुए विनय, शिष्टाचार का तो विशेष पालन करना पड़ेगा।"

गोविन्द का सुझाव और शर्मा जी की विधि को सभी ने पसन्द किया। उपस्थित सभी अध्यापकों ने भाग दौड़ करके अगले दिन शहर के सभी अध्यापकों से सम्पर्क किया और एक विद्यालय में सभा का आयोजन किया। इस सभा में सभी अध्यापकों ने नगर के सभी विद्यार्थियों से सम्पर्क करके इस पुण्य-यज्ञ में योगदान देने का निश्चय किया।

अगले दिन शहर की हर गली और सड़क पर हाथ में झोला, डिब्बा या कुछ पसारे विद्यार्थी ही विद्यार्थी दिखाई देने लगे। विद्यार्थियों के प्रत्येक दल के साथ मुखिया के रूप में एक-एक अध्यापक भी थे। वैसे तो नगर में गोविन्द के नाम की चर्चा थी ही, लेकिन इस नये अभियान से तो सभी लोगों में उठते बैठते, सोते जागते उसी का जिक्र होने लगा। अतः जब विद्यार्थी-गण दुकानों और घरों में चन्दा इकट्ठा करने पहुँचे और वहाँ पहुँचकर अत्यन्त शिष्टाचार, विनयपूर्वक तथा अनुशासनपूर्ण तरीके से चन्दा मांगा, तो उनका यह आचरण देखकर किसी से मना करते नहीं बना। सभी ने दिल खोलकर चन्दा दिया। कुछेक बूढ़े व्यापारियों ने तो सौ-सौ और हजार रुपये तक दे डाले।

[illegible] शर्मा जी के

"अपनी शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात आप क्या करने अथवा बनने
रादा रखते हैं ?"

"मैं सोचता हूँ कि अपने मित्रों सहित खेतों में जाकर खेती करूँ अ
श में अधिक से अधिक उत्पादन करने में सहायता पहुँचाऊँ।"

"यह काम तो आप स्कूल की शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात भी
कते हैं।"

"हाँ कर सकता हूँ, लेकिन मैं अध्ययन करना आवश्यक समझता हूँ
तों में काम करना ध्येय हुआ और अध्ययन का अभिप्राय ज्ञान का विक
रना है।"

"आदर्श विद्यार्थी के लिये आप किस गुण को अति आवश्यक मानते हैं?

"यों तो शिष्टता, मृदु व्यवहार, आदर-भाव, आज्ञाकारिता आदि सभ
ण विद्यार्थी में होने चाहियें, किन्तु विनयशीलता को मैं नितान्त आवश्य
ण मानता हूँ।"

"आपके पिता पोस्टमैन हैं ?"

"जी हाँ।"

"इतना मान-सम्मान और ख्याति पाकर क्या आपको ऐसा नहीं लगत
आप भी किसी बड़े आदमी के पुत्र होते तो अच्छा होता ?"

यह प्रश्न सुनकर गोविन्द का चेहरा गम्भीर हो गया। उसने एक तीख
र शिकायत भरी दृष्टि से संवाददाता की ओर देखा, फिर कहा—"आप मेरे
ताजी का अपमान कर रहे हैं !"

"क्षमा करिये——मेरा मतलब था——।

गोविन्द ने उसकी बात बीच में ही काट दी और बोला—"आपका
लब कुछ भी हो, लेकिन मैं आपको यह बता दूँ कि मेरे पिताजी किसी भी
ड़ किसी बड़े आदमी से कम नहीं। विचारणीय यह नहीं कि वे क्या करते हैं,
चारणीय तो यह है कि वे कैसे करते हैं। वे एक ईमानदार पोस्ट मैन हैं,
न्हें अपने काम से प्यार है। दिन भर मेहनत करके वे पसीना बहाते हैं।
के अपने पिताजी पर गर्व है, मुझे अपने आप पर भी गर्व है कि मैं एक
हनतकश और ईमानदार पिता का पुत्र हूँ।"

गोविन्द का यह उत्तर सुनकर संवाददाता बगलें झाँकने लगा इस प्रश्न के पश्चात विराम लगाकर उसने विदा ली और चला गया।

अगले दिन नगर के अनेक स्थानीय पत्रों के मुखपृष्ठ पर गोविन्द की गतिविधियों के विषय में विस्तार से समाचार प्राप्त हुए। उसके फोटो भी समाचार-पत्रों में आने लगे, लेकिन वह तो अपनी प्रशंसा और फोटो के चाव से कोसों दूर था। इन बातों के लिये उसे फुरसत ही कहाँ थी। लोग उसे घेर कर बातें करना चाहते थे। कुछ पूछना, कुछ कहना चाहते थे, लेकिन उसे समय नहीं था। उसने समय के मूल्य को समझा था, तभी आज समय उसके मूल्य को समझ रहा था।

नगर के सभी छोटे बड़े, गरीब-अमीर, पढ़-अनपढ़ स्त्री-पुरुष गोविन्द को सहयोग देने के लिये जैसे कमर कसकर तैयार हो गये थे। चन्दा इकट्ठा हुआ तो रामदयाल जी की दी गई जमीन पर पुरुषार्थनगर का निर्माण आरम्भ हो गया। नगर से झोंपड़ियाँ बनाने के लिये सिरकियाँ, बाँस तथा अन्य सामान ट्रकों पर लाद कर वहाँ लाया गया और ट्रक-मालिकों ने किराया नहीं लिया। सिरकियों और बाँस-बल्ली वालों ने मुनाफा छोड़कर केवल मूल्य लिया। लकड़ी का सामान जिस टिम्बर-मार्ट से मँगाया गया, उसने भी सस्ते भाव में ही लकड़ियाँ भेज दीं। टाइल्स के विक्रेताओं ने भी मुनाफा लेने की जरूरत नहीं समझी। कुछ खास किस्म का काम, जो मजदूरों के बिना नहीं हो सकता था, उसके लिये ही मजदूरों को बुलाया गया, शेष काम तो विद्यार्थियों ने मिलकर ही पूरा कर डाला।

पुरुषार्थनगर में झोंपड़ियाँ खड़ी हो गई। पास के दो कुओं में पानी की व्यवस्था भी कर गई। अब वहाँ एक ट्रक में तकलियाँ और चरखे भरकर लाए गए। एक ट्रक बेंत में लादकर लाया। एक ट्रक में लकड़ी, कपास, चना वगैरा लाया गया। कुछ हाथ से चलने वाली कपड़ा [illegible] की मशीनें लाई गई।

चोले को सदा के लिये दूर करने व जला डालने की तैयारियाँ शुरू हो गईं।

अध्यापकों के नेतृत्व में विद्यार्थियों की अनेक टोलियाँ नगर व सड़कों में भीख माँगते हुए भिखारियों को घेरकर उन्हें पुरुषार्थनगर तक ले जाने में व्यस्त हो गईं। भिखारियों को घेरकर उन्हें प्रेम और प्यार से समझाया गया। उनके वर्तमान जीवन के कष्ट व दुखों को स्पष्ट करके उनके सामने उज्ज्वल भविष्य का चित्र प्रस्तुत किया गया। दीन और हीन जीवन बीताने की अपेक्षा उन्हें सम्मानपूर्वक जीने के लाभ समझाये गये। अन्धा क्या माँगे, दो आँखें, अतः भिखारियों की मन चाही मुराद पूरी हो रही थी, तो वे इससे क्यों इन्कार करते। बड़ी संख्या में भिखारी लोग अपने जन्म जात चोले को उतार फेंकने के लिये तैयार हो गये, नये जीवन और उज्ज्वल भविष्य के प्रति उनका आकर्षण जाग्रत हुआ। उनके मानस में चेतना ने एक नई करवट ली।

गोविन्द के साथ विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का एक बड़ा समुदाय काम कर रहा था, इसलिये सभी काम शीघ्रता से होते जा रहे थे। सेठ रामदयाल जी को मालूम हुआ कि पुरुषार्थनगर बन गया है और वहाँ पुरुषार्थी आने शुरू हो गये हैं, तो वे अपनी कार में बैठकर वहाँ आये और पूरे पुरुषार्थनगर में घूमकर विद्यार्थियों की इस अनुपम सृष्टि को देखा। उन्होंने तुरन्त अपने मुनीम को पुरुषार्थियों के लिये कपड़ों व बिस्तरों की व्यवस्था करने की आज्ञा दी।

अब पुरुषार्थनगर में तकली व चरखा कातने, खिलौने व बेंत की कुर्सियाँ बनाने, बाँस की टोकरियाँ तैयार करने तथा दस्तकारी के छोटे मोटे काम होने शुरू हो गये। जो अपाहिज थे, उनको भी उनकी सुविधा के अनुसार काम सौंपा गया। इतना ही नहीं, कुछ पुरुषार्थी तो बनी हुई इन वस्तुओं को बाजार में बेचने भी जाने लगे। मज़े की बात यह थी कि लोग-बाग इन चीज़ों को जरूरत बिना भी बड़े शौक व चाव से खरीदने लगे थे।

कुछ ही दिनों में नगर में भिखारी नाम के जीव ऐसे गायब हो गये, जैसे गधे के सिर से सिंग गायब होते हैं। पुरुषार्थ नगर एक दर्शनीय-स्थान बन गया। नगर के स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े झुंड के झुंड बनाकर नित्य ही इस अनोखे को देखने के लिये आने लगे।

स्कूल की छुट्टियाँ एक-दो दिन में समाप्त होने वाली थीं। महात्मा गांधी विद्यालय के प्रधानाध्यापक महोदय छुट्टियों में कश्मीर गये हुए थे। जब वे लौटे और उन्होंने अपने विद्यालय के विद्यार्थी के विषय में इतना कुछ सुना, तो भागे भागे उसके घर पहुँचे। गोविन्द दरवाजे पर ही मिल गया, उन्होंने लपक कर उसे गले से लगा लिया और उसका माथा चूमा। यह दृश्य देखकर गोविन्द की माँ और उसके पिता की आँखों में खुशी के आँसू छलक आये। गोविन्द के सिर पर हाथ फेरते हुए प्रधानाध्यापक जी ने कहा—"तुमने अपने माता पिता के साथ साथ मेरा और स्कूल का नाम भी ऊँचा कर दिया गोविन्द! तुम लाखों में एक हो! तुम हीरा हो कोहिनूर हीरा!

उसकी पीठ ठोकते हुए प्रधानाध्यापक जी मन ही मन उसे नागरिक-सम्मान देने का निश्चय करते हुए चले गये।

जिस दिन स्कूल खुला, उसी दिन स्कूल में ही गोविन्द को नागरिक-सम्मान देने का आयोजन हुआ। सेठ रामदयाल जी को मुख्य अतिथि बनाकर आमन्त्रित किया गया। गोविन्द को इतना सम्मान मिल रहा था, इस पर शर्मा जी, राकेश, अरुण, शेखर, रमेश, मनोहर, छज्जूराम और जग्गू सभी खुशी से फूलकर कुप्पे हुए फिर रहे थे। रामदास भी, जो अपने लॉर्ड को अब गोविन्द लॉर्ड कहने लगा था तथा जिसने अब तक हिन्दी भी सीख ली थी, खुशी में इधर से उधर और उधर से इधर घूमता फिर रहा था।

समारोह में विद्यालय के विद्यार्थियों के अतिरिक्त नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति, अन्य विद्यालयों के अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक, नगर पालिका के सदस्य लोक सभा के सदस्य, गोविन्द के माता पिता तथा अनेक अधिकारी भी उपस्थित थे।

समारोह आरम्भ हुआ। सेठ जी ने एक बहुत बड़ा पुष्पाहार गोविन्द के गले में पहिनाया। गोविन्द ने आगे बढ़कर उनके चरण छुए, सेठ जी ने उसे गले लगा लिया। इस पर तालियों की गड़गड़ाहट से आसमान गूँज उठा। यह देख कर गोविन्द की माँ की आँखों से खुशी के आँसू बह चले। रामनारायण जी की आँखें भी नम हो गईं।

प्रधानाध्यापक जी ने स्वागत-भाषण में कहा—"आप लोगों ने देखा कि विद्यार्थियों के संगठन में कितनी जबरदस्त रचनात्मक शक्ति छिपी हुई है। आपने नन्हें वीरों की कथा सुनी होगी जैसे अभिमन्यु, आपने नन्हें भक्तों की चर्चाएँ सुनी होंगी जैसे ध्रुव और प्रहलाद, किन्तु आपने कभी किसी समाज-सेवी बालक के बारे में कुछ सुना या पढ़ा नहीं होगा। तो आप देखिये, आपके सामने यह बालक गोविन्द मौजूद है। मैं विद्यार्थियों से विशेष रूप से कहना चाहता हूँ कि वे गोविन्द के आदर्श को अपने सामने रखें। याद रहे कि हमारे देश का प्रत्येक विद्यार्थी एक जलता हुआ दीपक है, एक महकता हुआ फूल है, जिसे अज्ञान के अन्धकार और दुख की दुर्गन्ध को दूर भगाना है। गोविन्द का आदर्श आप से पुकार पुकार कर कह रहा है कि आपको भी दीपक बनकर रोशनी और फूल बनकर खुशबू देनी है। आप यह भी न भूलें कि इसके लिये विनय की नितान्त आवश्यकता है। सफलता और महानता के भंडार की कुंजी विनय है। गोविन्द विनय की जीती जागती तस्वीर है। इस अवसर पर मैं शर्मा जी, राकेश, अरुण तथा उन विद्यार्थियों व अध्यापकों की सराहना किये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इस कार्य में अपना पूरा पूरा सहयोग देकर इसे सफल बनाया। अन्त में मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारे देश के प्रत्येक बालक और विद्यार्थी को गोविन्द जैसा बनायें और गोविन्द के लिये यही शुभ-कामना करूँगा कि भगवान उसे इतनी शक्ति और सामर्थ्य दें कि वह अपने दीपक और फूल जैसे जीवन से सारे देश में रोशनी व खुशबू फैला दे।"

एक बार फिर तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण गूँज उठा। इसके बाद अनेक लोगों ने गोविन्द की सराहना करते हुए उसके माता-पिता को धन्यवाद दिया, जिन्होंने देश को ऐसा पुत्र रत्न दिया।

आयोजन समाप्त होने पर गोविन्द ने माँ और पिताजी के पाँव छुए, तत्पश्चात विद्यालय के तथा अन्य उपस्थित अध्यापकों के चरण छूकर प्रणाम किया।

खुशी के इस अनोखे व अनूठे अवसर पर प्रधानाध्यापक जी ने एक दिन की छुट्टी की घोषणा की।